आदि शाङ्कर

सुमेरुमठ काशी

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी
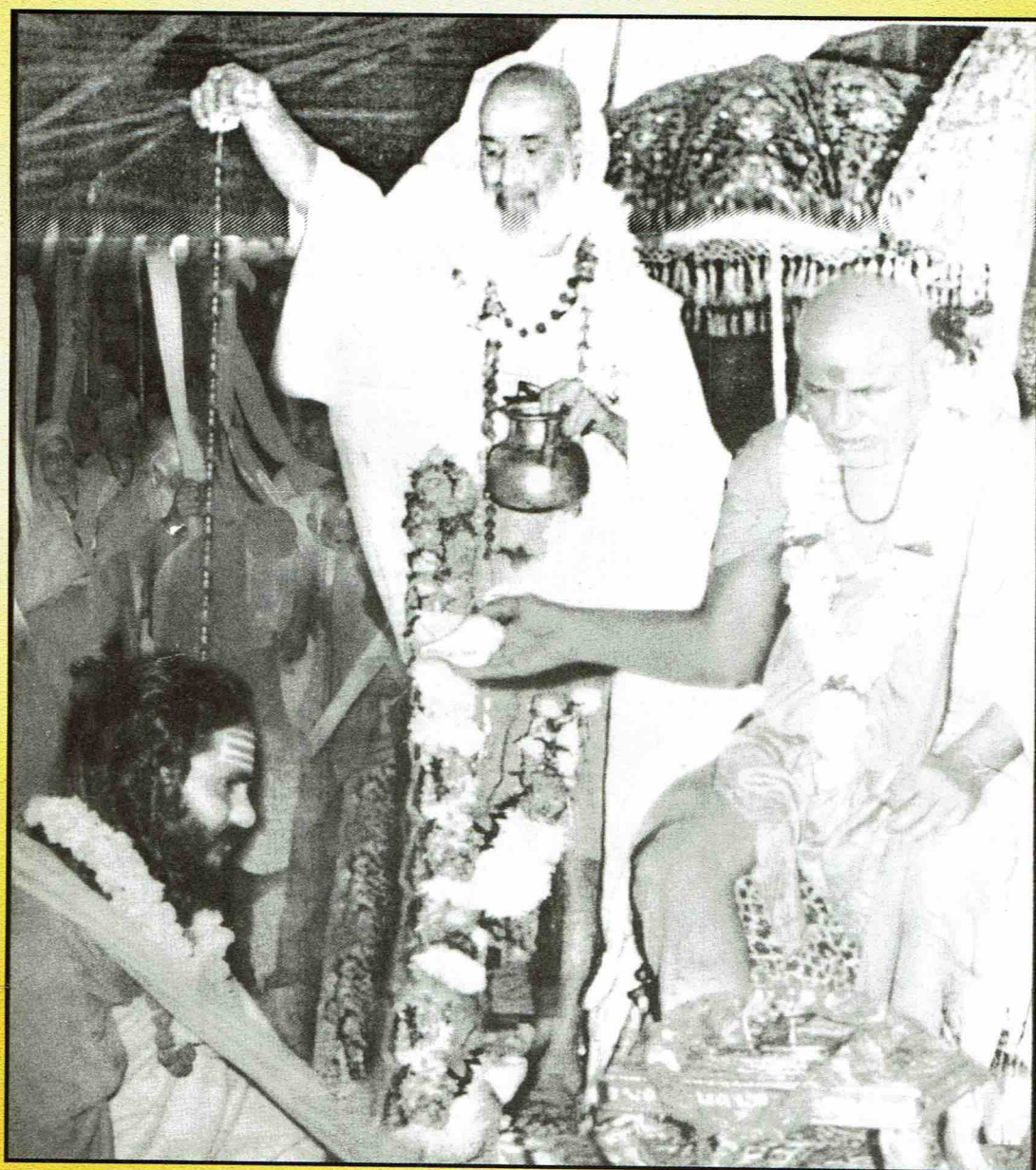
काशी सुमेरु पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी शङ्करानन्द सरस्वती जी एवं
पुरी पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी महाराज
द्वारा वर्तमान शंकराचार्य जी का अभिषेक

आदिशङ्कराचार्य एवं आदिशाङ्करमठ-सुमेरुमठ काशी

सम्पादक :

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी

प्रकाशक

श्रीकाशी विद्वत परिषद्, वाराणसी

श्रीकाशी विश्वनाथ दण्डी संन्यासी समिति-वाराणसी

विषय-सूची

□□

प्रिय भाइयों एवं बहनों,

ऊर्ध्वाम्नायश्रीकाशीसुमेरुमठ जगद्गुरुशङ्कराचार्य मठ अस्सी वाराणसी की ओर से शाङ्करमठाम्नाय मठानुशासन सहित प्रकाशित हो रहा है। यह मेरे तथा आप सभी के लिए प्रसन्नता का विषय है। आदि शङ्कराचार्य ने भारत के विभिन्न भागों में कुल सात मठों की स्थापना की थी, उसमें काशी का मठ विशिष्ट है। वैदिक धर्म की रक्षा के लिए मठों की स्थापना कर वहाँ मठाध्यक्षों को नियुक्त किया तथा प्रत्येक मठ का क्षेत्र निर्धारित कर मठाध्यक्षों के लिए "महानुशासन" भी बनाया, जो इसी ग्रन्थ के अन्त में प्रकाशित हो रहा है। उस महानुशासननामक ग्रन्थ में आचार्यशङ्कर ने चारों युगों के पृथक् पृथक् जगद्गुरु बताया है। उनमें स्वयम् आचार्य शङ्कर ने कलियुग में जगद्गुरु के रूप में अपने को बताया है। साथ ही उसी ग्रन्थ में यह भी बताया है कि मेरे इस पीठ पर जो भी आरूढ़ होगा "उस रूप में मैं ही स्वयं हूँ" ऐसा मानकर लोग वर्ताव करेंगे।

"वैदिक धर्म का कलि में उद्धर्ता के रूप में आचार्य शङ्कर अग्रणी हैं" इसमें किसी को किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं है। "वर्तमान में काशीपीठ पर श्री नरेन्द्रानन्दसरस्वती के रूप में आदिशङ्कराचार्य प्रतिष्ठित हैं" ऐसा मानना उचित है। श्री नरेन्द्रानन्दसरस्वती जी ने प्रतिष्ठित एवं सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर योगादि दर्शन, शास्त्र, पुराण तथा वेदतत्त्वों का अच्छे आचार्यों से अध्ययन करने के साथ ही ब्रह्मलीनशङ्कराचार्य स्वामी शङ्करानन्दसरस्वती जी से भी वेदान्त तथा साङ्ख्य दर्शन का विशिष्ट अध्ययन कर वैदुष्य के क्षेत्र में अपना स्थान बनाया है। "श्री स्वामी नरेन्द्रानन्द सरस्वती जी जगद्गुरु जी महाराज स्वभाव से मृदु, प्रिय एवं सत्यवक्ता, मिलनसार, अभिमानशून्य, सुसंस्कृत उच्चकोटि के महात्मा हैं" इसमें किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए। "धर्ममार्ग में आप सभी इनका मार्गदर्शन लेते रहें" आप से मेरी यही प्रार्थना है।

मैं इस मठ के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

भवदीय

डॉ. हरिनारायणतिवारी

अध्यक्ष काशी विद्वत् परिषद्

तिथि
विक्रम सं० २०६१
वसंत पंचमी

नगर निगम प्रेक्षागृह काशी में विद्वत् सभा में आये हुए सन्त-महात्मागण

नगर निगम प्रेक्षागृह काशी में महाराज श्री द्वारा सनातन धर्म गोष्ठी तथा काशी विद्वत् सभा को सम्बोधन साथ में माधवानन्दपुरी जी तथा महामण्डलेश्वर विश्वगुरु महेश्वरानन्द पुरी जी महाराज

कांची शंकराचार्य मठ में शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती जी द्वारा महाराज श्री का अभिनन्दन

विश्वविद्यालय में महाराज श्री भक्तों के साथ तथा साथ में कुलपति दुर्ग सिंह चौहान

महाराज श्री के साथ सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति राजेन्द्र मिश्र

महाकुम्भ इलाहाबाद प्रयाग में यज्ञ मण्डप में महामण्डलेश्वरों के साथ महाराज श्री

हमीरपुर जनपद के मऊदहां स्थित बड़ी देवी मन्दिर में महायज्ञ के अवसर पर महाराज श्री अपार जन-समूह को सम्बोधित करते हुए

महाराज श्री नेपाल के प्रधानमंत्री गिरिजा प्रसाद कोईराला से विचार-विमर्श करते हुए
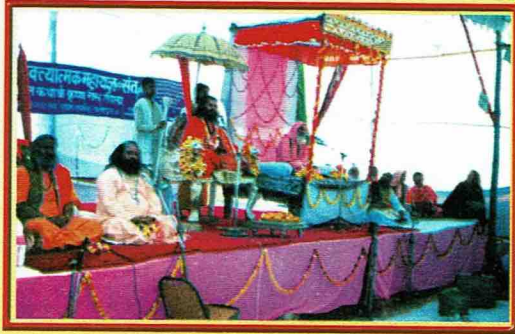
सभा को सम्बोधित करते हुए महाराज श्री साथ में युगपुरूष परमानन्द जी

महाराज श्री के विदेशी शिष्यगण

महाराज श्री वैदिक विद्यार्थियों के साथ
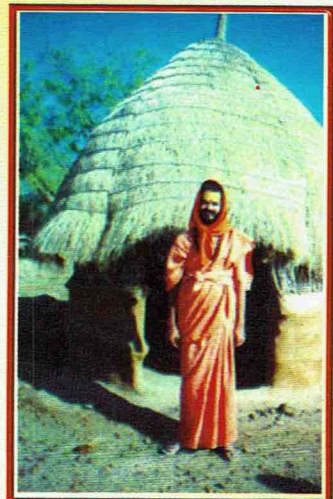
महाराज श्री विश्वकल्याणार्थ साधना काल में

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा सम्मान के अवसर पर
महाराज श्री के साथ संस्थान के तत्कालीन अध्यक्ष
डॉ. हृदय रंजन शर्मा, डॉ. नागेन्द्र पाण्डेय आदि

कुम्भ मेला प्रयागराज में महाराज श्री अपने
विभिन्न शिष्यों के साथ

महाराज श्री के साथ सदानन्द सरस्वती वेदान्ती जी

महाराज श्री के साथ जगद्‌गुरु शंकराचार्य
स्वामी राजराजेश्वर आश्रम विचार-विनिमय करते हुए
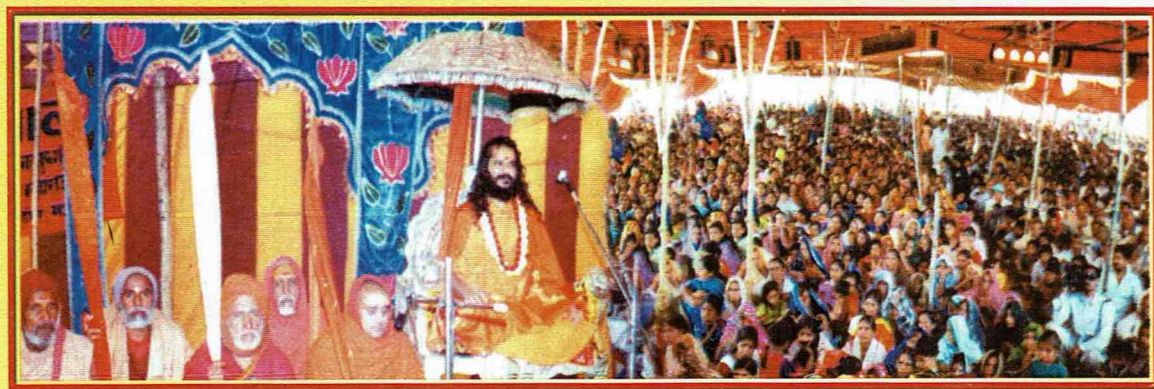
कुम्भ मेला प्रयागराज में महाराज श्री अपार जन-समूह को सम्बोधित करते हुए तथा मंच पर
विश्व गुरु स्वामी करुणानन्द सरस्वती आदि यतिबिन्द

पूज्य गुरूदेव जी के साथ महाराज श्री

उज्जैन रुद्रसागर में सन्त-सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए
महाराज श्री साथ जूना अखाड़ा के महामण्डलेश्वर
श्री अवधेशनन्दगिरि जी महाराज, सत्यमित्रानन्दगिरि जी महाराज,
युगपुरुष आ.म.म. परमानन्द गिरि जी व अशोक सिंघल जी आदि

महाराज श्री के साथ जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी माधवाश्रम जी
महाराज एवं प्रताप चैतन्य ब्रह्मचारी जी

महाराज श्री के साथ
जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री भारती तीर्थ जी महाराज
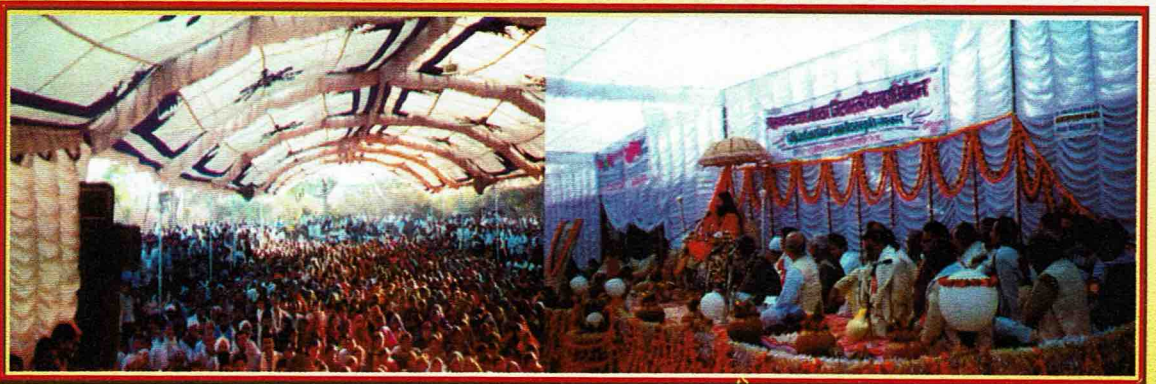
गोपालगंज (बिहार) में ब्राह्मण सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए महाराज श्री

नेपाल में महाराज श्री के द्वारा विश्वविद्यालय का शिलान्यास
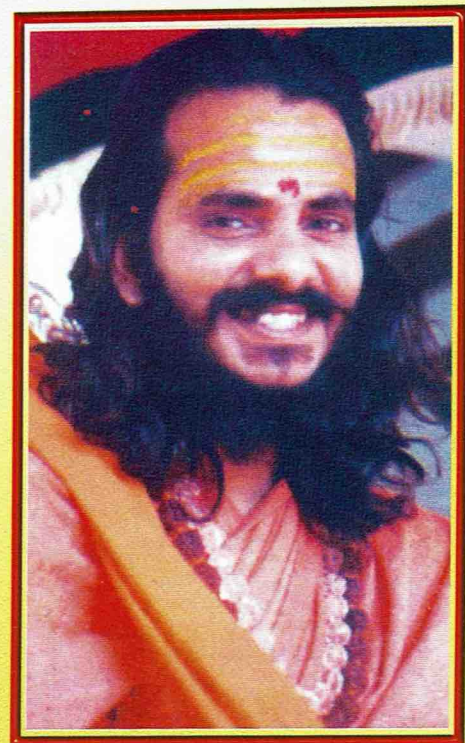
प्रसन्न मुद्रा में महाराज श्री
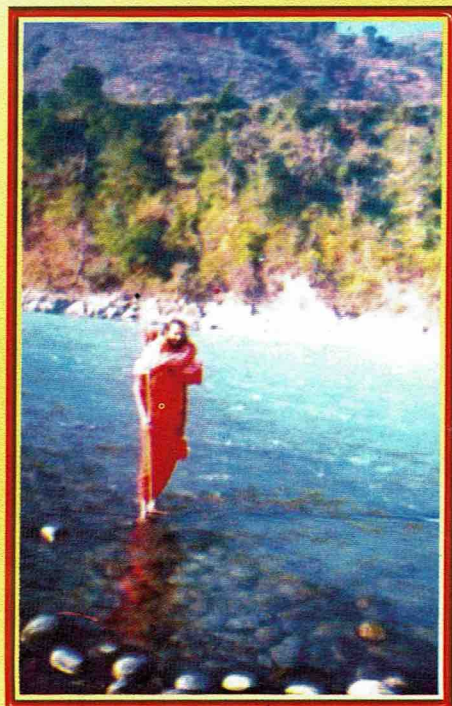
हिमालय के गंगोत्री में महाराज श्री साधना के लिए जाते हुए
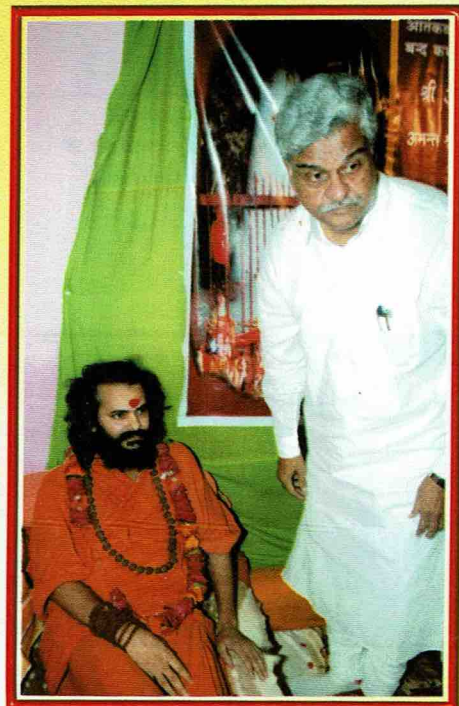
केन्द्रीय कोयला मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल
शंकराचार्य जी से अशीर्वाद लेते हुए।

महर्षि महेश योगी के जन्मदिन पर महर्षि विद्यामन्दिर पहुँचने पर महाराज श्री का भव्य स्वागत समारोह

महाराज श्री के साथ राम जन्म-भूमि न्यास के अध्यक्ष श्री रामचन्द्र परमहंस जी एवं श्री रमेश पाण्डेय जी

सुमेरु मठ की सभा में शंकराचार्य जी के साथ प्रवीन भाई तोगडिया जी।

पूर्व उप-प्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी को श्री राम मन्दिर समस्या पर महाराज श्री निर्देश देते हुए

जबलपुर में महाराज श्री के द्वारा बाबा शारदानन्द के यज्ञ-मण्डप पर अभिषेक आरम्भ करने का निर्देश देते हुए
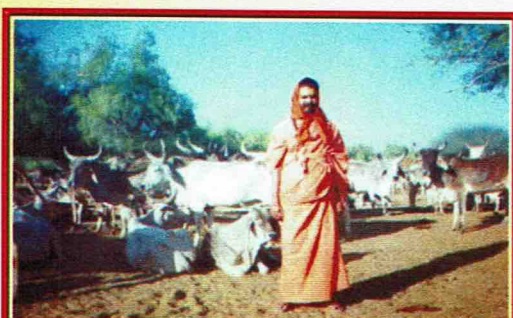
महाराज श्री गोशाला में अवलोकन करते हुए

आदि शाङ्कर शंकराचार्य महासंस्थान सुमेरु मठ काशी में ज्योतिष सम्मेलन में आये हुए काशी विद्वत परिषद् के अध्यक्ष रामयत्न शुक्ल, श्री रामचन्द्र पाण्डेय, डॉ. कामेश्वर उपाध्याय, इन्दुशेखर पाण्डेय, सदानन्द शुक्ल, आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी एवं रमाकान्त पाण्डेय।

लखनऊ में महाराज श्री के साथ उनके शिष्य पूर्ण कैप्टन रामनरेश त्रिपाठी जी एवं मिथिलेश दीक्षित जी

महाराज श्री के साथ
जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज

महाराज श्री के साथ पंचायती महानिर्वाणी अखाड़ा के आ.म.म. विश्वदेवानन्द पुरी जी महाराज, विश्वगुरु महेश्वरानन्द व महामण्डलेश्वर अभेद्यानन्द

अपार जनसमूह को सम्बोधित करते हुए महाराज श्री

उ.प्र. कांग्रेस अध्यक्ष रीता बहुगुणा जोशी महाराज श्री
से आशीर्वाद लेते हुए।

महाराज श्री के साथ अखाड़ा परिषद के अध्यक्ष
महन्त श्री ज्ञानदास जी महाराज

अखिल भारतीय धर्माचार्य सम्मेलन में आये हुए सन्त-महात्मागण

अखिल भारतीय धर्माचार्य सम्मेलन में महाराज श्री
सभा को सम्बोधित करते हुए

महाराज श्री के साथ बायें से- जगद्गुरु रामानन्दाचार्य रामभद्राचार्य
आ.म. विष्णुपुरी जी महाराज, आ.म. परमानन्द गिरि जी, आचार्य धर्मेन्द्र जी
रेवासा पीठाधीश्वर स्वामी राघवाचार्य वेदान्ती, स्वामी कृष्णाचार्य जी

महाराज श्री के साथ चिदानन्द मुनि जी, दलाई लामा जी
अशोक सिंघल जी एवं उत्तर प्रदेश के राज्यपाल
सूरजभान जी

विधान सभा भवन उ.प्र. के सामने अनसनरत् अध्यापकों को सम्बोधित करते हुए महाराज श्री

इन्दौर में निरंजनी अखाड़ा के महामण्डलेश्वर द्वारा महाराज श्री का स्वागत अभिनन्दन तथा साथ में आचार्य म.म. पुण्यानन्द गिरि जी महाराज

महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री मनोहर जोशी जी एवं शिवसेना विधायक राजन विचारे जी, थाणे महाराज श्री का स्वागत करते हुए।

महाराज श्री के साथ जगद्गुरु शंकराचार्य दत्तयोगेश्वर देव तीर्थ जी महाराज

महाराज श्री के साथ पद्म विभूषण पं. किशन महाराज जी

मानस मन्दिर (काशी में) काशी विद्वत् परिषद के महामंत्री बटुक प्रसाद शास्त्री जी द्वारा महाराज श्री का पूजन

महाराज श्री महाकाल गोशाला का शिलान्यास करते हुए

महाराज श्री से आशीर्वाद लेते हुए
भारतीय जल सेना के प्रमुख विष्णुभागवत जी

महाराज श्री इण्टर कालेज में विद्यार्थियों के साथ

का.हि.वि.वि. स्थित मालवीय भवन में "इण्डियन एकेडमी ऑफ योगा" के शताब्दी में योगा अपचार कार्यशाला में पहुँचने पर महाराज श्री
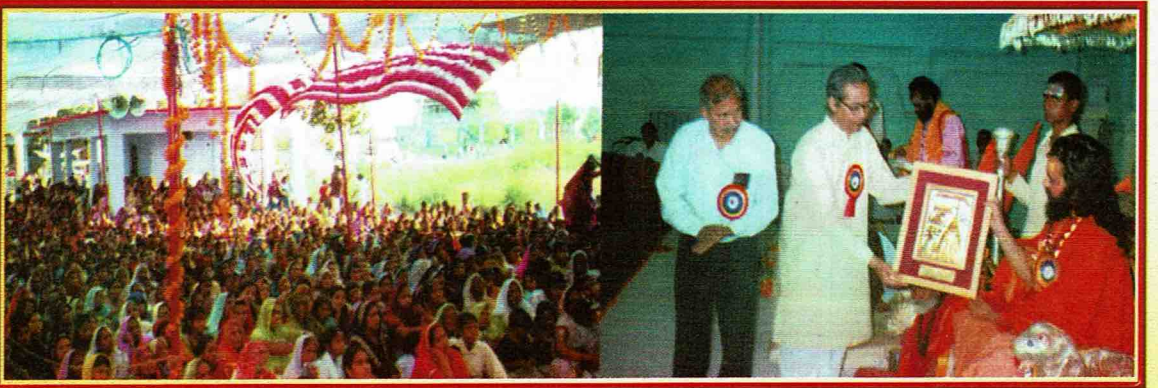
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित मालवीय भवन में "इण्डियन एकेडमी ऑफ योगा" के शताब्दी में योग अपचार कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए महाराज श्री

मुम्बई एयरपोर्ट से बाहर आते हुए महाराज श्री के साथ में ओम जी मालपुरिया

सन्त सम्मेलन में शंकराचार्य नरेन्द्रानन्द जी के साथ दिव्यानन्द तीर्थ, म.मं. हंसदास, श्री श्री रविशंकर, नारायण साई चिदानन्द मुनिजी, म.मं. महेश्वरानन्द, स्वामी अग्निवेश

महाराज श्री के साथ विश्वगुरु करुणानन्द जी एवं कैलाश विजयवर्गीय (लोक निर्माण मंत्री, मध्य प्रदेश)
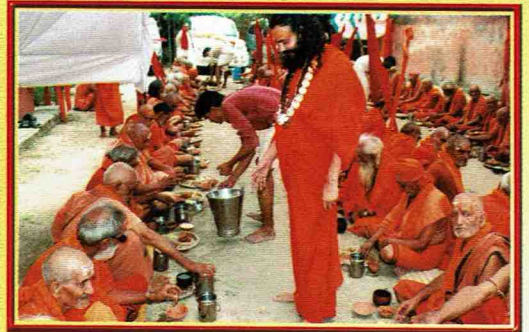
काशी सुमेरु मठ में सन्तों का भण्डारा में महाराज श्री

जबलपुर में कृषि ऊपज मण्डी में दिग्विजय यात्रा के अन्तर्गत अपार जनसमूह को सम्बोधित करते हुए महाराज श्री तथा उनका पूजन करते हुए सांसद चन्द्रभान सिंह

महाराज श्री महाकाल गोशाला का शिलान्यास करते हुए

महाराज श्री से आशीर्वाद लेते हुए
भारतीय जल सेना के प्रमुख विष्णुभागवत जी

महाराज श्री इण्टर कालेज में विद्यार्थियों के साथ

का.हि.वि.वि. स्थित मालवीय भवन में "इण्डियन एकेडमी ऑफ योगा" के शताब्दी में योगा अपचार कार्यशाला में पहुँचने पर महाराज श्री
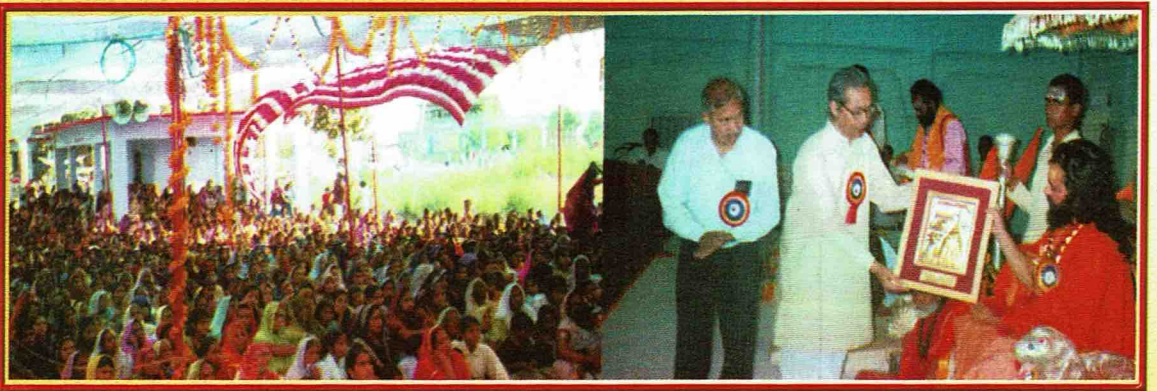
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित मालवीय भवन में "इण्डियन एकेडमी ऑफ योगा" के शताब्दी में योग अपचार कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए महाराज श्री

महाराज श्री के साथ राम-मन्दिर समस्या पर चर्चा करते
अशोक सिंघल जी

महाराज श्री के साथ
जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री वासुदेवानन्द सरस्वती जी महाराज

महाराज श्री के साथ राम जन्म-भूमि न्यास के वर्तमान अध्यक्ष
महन्त नृत्य गोपाल दास जी महाराज

महाराज श्री द्वारा बिल्वार्चन करते हुए प्रकट हुए सर्प।

सागर के धाना क्षेत्र (चित्रकूट में) रामकथा में भक्तों को सम्बोधित करते हुए महाराज श्री

उत्तिष्ठित ! जाग्रत

परमात्मा की सत्ता अणु-अणु में व्याप्त है। अद्वैत मतावलम्बी अणु-अणु को परमात्मा का रूप ही मानते हैं अथवा परमात्मा ही मानते हैं। उस परमात्मा से भिन्न किसी भी पदार्थ या अन्य तत्त्व की पारमार्थिक सत्ता को स्वीकार नहीं करते। ईश्वर सच्चिदानंद है, सर्वथा चेतन है और समस्त जड़ दिखने वाले पदार्थ भी वस्तुत: चेतन ही हैं। उनमें स्थूलता से चैतन्य की अभिव्यक्ति नहीं दिखती किंतु सूक्ष्मत: वे चैतन्य हैं। उसमें स्थूलता से इंद्रियों तथा मन की अभिव्यक्ति मुख्य कारण हैं। आत्मा को ही लीजिए, यह चेतन है। आत्मा शरीर में विद्यमान होता है। मरण के समय शरीर में इंद्रियां और मन अभिव्यक्त नहीं होते, तब वह आत्मा और शरीर भी सचेष्ट नहीं रह जाता। हमारा भारतीय आध्यात्म विज्ञान अथवा दर्शन और हमारे पूर्ववर्ती ऋषि-महर्षि-मनीषियों ने बहुत पहले ही इसका ज्ञान व्यवहारिक स्तर पर कर लिया था और उसकी सविस्तार विवेचना विविध शास्त्रों में किया है। जिसकी यथार्थता आज के शीर्ष भौतिक वैज्ञानिक भी किसी न किसी नाम से स्वीकार कर रहे हैं। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जहां भौतिक विज्ञान की पराकाष्ठा है वहाँ से ही हमारा अध्यात्म विज्ञान आरम्भ होता है।

भारतीय सनातनधर्म और अध्यात्मदर्शन के मनीषियों की शृंखला में परम पूज्य भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य जी ने इस अध्यात्मविज्ञान के तात्त्विक-स्वरूप को समझ कर ईश्वर के अद्वैत और द्वैत रूप के उपासकों के मतवैभिन्य को समाप्त कर समन्वित उपासना की परम्परा का प्रतिपादन किया। ब्रह्म की सत्ता को निराकार और साकार रूप में उपास्य बता कर हिन्दू अथवा भारतीय अध्यात्म एवं धर्म के अध्येताओं को नवीन मार्ग सुलभ कराया। तत्कालीन भारत में धर्म के नाम पर व्याप्त अनेक मत-मतान्तरों से उत्पन्न विवादों का आध्यात्मिक समाधान उपलब्ध करा कर धर्मप्राण भारतीय जन मानस को प्रकाशित करने का अद्भुत व चमत्कारिक कार्य किया।

आज भारतीय हिन्दू समाज एवं संत समाज भगवत्पाद आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य के बताए मार्ग एवं सिद्धान्तों को ही पाथेय मानते हुए भारतीय सनातन संस्कार व वर्णाश्रम धर्म के प्रचार-प्रसार में प्रयासरत है। यद्यपि भारतीय अध्यात्म के प्रति उदासीनता से जन-मानस पुन: अशांत व दु:खी है।

वर्तमान समय में आध्यात्मिक एवं धार्मिक संगठन दुर्बल पड़ गये हैं। पंचमहायज्ञ, नित्यतर्पणदान आदि परम्परा समाप्त होती जा रही है। मठ-मन्दिर की व्यवस्था सत्तामुखापेक्षी होने लगी है या इसकी सम्पत्ति भी धर्मरक्षा में न लग कर वर्गसंघर्ष में लग रही है।

ऐसी परिस्थिति में हमें स्वयं धर्म की शरण मे जाने की आवश्यकता है। शिव, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, गणेश, शक्ति या जिस किसी भी देवता के मानने वाले हों, हमें मानवता का उत्पीड़न बन्द करना चाहिए। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" के देश में कौन किसे कष्ट दे? क्यों दे? किसे पूजे? किसे ठुकराये?

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनं ।।

विवेक और दया का संबल ही आज मानवता को बचा सकता है। कर्म ही पूजा की भावना, कर्ता को परमेश्वर बनायेगी और यही परमेश्वर धर्म-मार्ग का अनुगमन करने पर आज की सभी समस्याओं का समाधान कर सकेगा।

कभी कोई भी धर्म अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहादि का विरोध नहीं करता। धर्म की ओट में राजनीति करने वाले जन, चाहे वे किसी रूप में हों, अपने स्वार्थसाधन में मानव-मानव को बाँटते हैं।

'नाना पथजुशां' मानने वाले के देश में मतभेद और उपासना पद्धतियों को लेकर संघर्ष; स्त्री, दुर्बल, बच्चों का शोषण, रक्तपात और भ्रष्टाचार धर्मदण्ड के त्याग का ही अभिशाप है।

अतः महाकाल की नगरी उज्जैन के महाकुम्भ तथा भारतीय लोकतन्त्र के सामयिक कुम्भ, महाशक्ति के राजनैतिक ताण्डव की बेला में हम काशी-विश्वनाथ प्रतिपादित सनातन धर्मव्यवस्था की शरणागति के मार्ग का अवलम्बन कर धर्म संस्थापना की ओर बढ़ चलें। धर्म की सत्ता को पहले अपने अन्तःकरण में, तत्पश्चात समाज और राष्ट्र में प्रतिष्ठापित करें।

इति शम् ।

□□

आदि शङ्कराचार्य एवं आदि शाङ्करमठ-सुमेरुमठ काशी

धर्म जगत् की प्राथमिक एवं प्रामाणिक व्यवस्था है, जो वर्तमान को दुर्व्यवस्थाओं से मुक्त कर उन्नत भविष्य की ओर प्रवर्तित करती है। धर्म मूल प्रकृति है, जिसका किसी से कभी भी विरोध नहीं हो सकता है। समय-समय पर आचार्यों ने सूत्रग्रन्थों तथा धर्मशास्त्रों के माध्यम से धर्मसम्पादनार्थ सामयिकविधि निषेधों की व्यवस्थाएँ दी हैं।

समकालिक परिस्थितियों को देखते हुए ही अवतार एवं ऋषि रूपों से परमात्मा ने अपने आचरण और उपदेश द्वारा धर्म को पुष्ट कर लोक के मार्ग निर्देशन का कार्य किया है, यही कारण है कि सनातनधर्म में दश या चौबीस भगवत् अवतारों की व्यवस्था की गई है, जिनमें कृष्ण को पूर्णावतार प्रतिपादित किया गया है। महाभारतान्तर्गत 'गीता' तथा भागवतोक्त एकादश स्कन्ध के उपदेश, यज्ञ और पूजा के निषेध जैसी आचारगत परम्परायें तथा उनकी विशेषताएँ धर्म को अनुप्राणित करती हैं।

महाभारत के बाद हुए विनाश के फलस्वरूप आये ह्रास के कारण श्रीकृष्णोत्तरकाल में पाञ्चरात्र, पाशुपत, शाक्त, कापालिक, बौद्ध, जैन मत प्रचलित हो गये, जिससे वेदप्रतिपादित धर्म भ्रमाच्छादित हो गया था। ऐसे ही काल में भगवान् शङ्कर ने शङ्कराचार्य के रूप में केरल प्रान्त के कालटी ग्राम में माता सती तथा पिता शिवगुरु के पुत्र के रूप में अवतार लिया।

इनके अवतरणकाल के निर्धारणविषयक अनेक मत प्रचलित हैं। काञ्चीमठ परम्परा एवं शङ्करविजयमकरन्द नामक ग्रन्थ में यह ईसा पूर्व ५०९ या २६३१ युधिष्ठिराब्द प्रतिपादित है। जो ऐतिहासिक दृष्टि से ईसा की सातवीं शताब्दी के रूप में मान्य है।

तीन वर्ष की अवस्था में पितृविछोह के पश्चात् पाँच वर्ष की अवस्था में इनका उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ। दो वर्ष तक गुरु गृह में रह कर माता की अनुमति ले ब्रह्मचारी शङ्कर संन्यास प्राप्ति की इच्छा से नर्मदा तट की ओर चल पड़े। आठ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने सन्यासग्रहण किया। इनके गुरु गोविन्दपाद तथा परम गुरु गौड़ पादाचार्य थे। महर्षि पतञ्जलि ने ही गोविन्दपाद नाम से संन्यासी शरीर में ब्रह्मचारी शङ्कर को योग विद्या और तत्त्वज्ञान का उपदेश दे, काशी जाने का आदेश दिया।

संन्यासी शङ्कर गुरु की आज्ञा से १६ वर्ष की आयु में काशी आकर मणिकर्णिकाघाट के समीप ठहरे, यहाँ चाण्डालवेशधारी विश्वनाथ को अपने शास्त्रार्थ से सन्तुष्ट कर आदिशङ्कराचार्य

की उपाधि तथा ब्रह्मसूत्रभाष्य रचने का आदेश प्राप्त किया, वहीं वेदव्यास को अपने शास्त्रार्थ से सन्तुष्ट कर इन्होंने १६ वर्ष की अतिरिक्त आयु प्राप्त की तथा पूर्ववर्ती सनन्दन को पद्मपादाचार्य के नाम से अपना पहला शिष्य बनाया और काशी के केदारखण्ड (वर्तमान गणेश महाल) में निरञ्जनेश्वर महादेव तथा दक्षिणाकाली की स्थापना के उपरान्त आदि शाङ्करमठ-सुमेरुमठ की सर्वप्रथम स्थापना की। इस प्रकार काशी विश्वनाथ आचार्य परम्परा के अन्तर्गत प्रथमगुरु तथा पद्मपादाचार्य शङ्कराचार्य के प्रथम शिष्य हुए। तथा काशी धर्म साम्राज्य का केन्द्रक (मुख्यालय) हुआ। काशीप्रवास में ही इन्होंने ब्रह्मसूत्र भाष्य की रचना तथा कर्म, चन्द्र, ग्रह, क्षपणक, पितृ, गरुड़, शेष सिद्ध आदि नाना मतों के सिद्धान्तों का खण्डन कर वैदिक मार्ग की प्रतिष्ठा की थी।

कूर्मपुराण के अनुसार काशी योगेश्वरविष्णु द्वारा योगीश्वर शिव को धर्मस्थापनार्थ ज्ञानखानि अघहानिकर मुक्तिदान हेतु प्राप्त की गई, जिसे उन्होंने १६ वर्षीय तरुण संन्यासी शङ्कर की चाण्डालवेश में परीक्षा ले, प्रसन्नतापूर्वक सौंप दी। ऐसा ही पराम्बा काली ने भी किया। ब्रह्मसूत्र भाष्य पर उनसे शास्त्रार्थ कर पूर्ववर्ती आचार्य महर्षि व्यास, जो पुराणों में शिव के अवतार माने जाते हैं, ने भी उन्हें धर्मसंस्थापनार्थ प्रेरित किया।

कालटी में जन्मे आदिशङ्कर का काशी में आदि आचार्य के रूप में प्रतिष्ठापन, आयुवृद्धि, प्रथम शिष्य सनन्दन (पद्मपादाचार्य), प्रथम मठ (सुमेरुमठ) प्रतिष्ठा, भाष्य रचना, आचार्य शङ्कर के नवजीवन का प्रारम्भ था। तदनन्तर विश्वनाथ के आशीर्वाद से आचार्य ने भारतवर्ष की धार्मिक व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए देश के विभिन्न भागों में मठों की स्थापना की। इनमें गोवर्धनमठ भारत के पूर्वी भाग जगन्नाथपुरी में, ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) उत्तर में बदरीकाश्रम के पास, शारदामठ पश्चिम में काठियावाड़ द्वारिका में, तथा शृङ्गेरीमठ दक्षिण भारत के मैसूर रियासत में स्थित है। भगवत्पाद आदिशङ्कराचार्य द्वारा अद्वैतवाद को अक्षुण्ण बनाये रखने एवं वर्णाश्रमाचारादि के परिपालनार्थ, वेदचतुष्टय का विभाग कर उनके महावाक्यों सहित दिक्चतुष्टय में सात धामों के समीप उपर्युक्त सात मठों की स्थापना की गई थी। हर एक आम्नायमठ के आचार-विचार, नियम-संयम, पद्धति, सम्प्रदाय, योग, पद, वेद, महावाक्य, देव, देवी, पीठ, तीर्थ व क्षेत्र आदि का निर्धारण कर उन्होंने ही मठाम्नाय नामक ग्रन्थ रचा था। उसमें भी इसे पाँचवें (श्रेष्ठ) मठ के रूप में उल्लिखित किया जो जनक याज्ञवल्क्य आदि श्रेष्ठ तत्त्वदर्शियों की परम्परा से सम्बद्ध है।

प्रश्न :– ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम होते हुए भी इसे पंचम क्यों कहा गया है?

उत्तर :– भगवान् शिव का पंचम मुख ऊर्ध्व भागस्थित है तथा सर्वश्रेष्ठ है। शंकराचार्य की धर्म व्यवस्था भी भगवान् शिव द्वारा स्थापित होने से शिवहेतु और शिवस्वरूप है। काशी

भी शिवस्वरूप ही है इसीलिए आद्य काशी में स्थित आदि शाङ्करमठ सुमेरुपीठ को पंचम ऊर्ध्वाम्नाय नाम दिया गया है।

इन मठों के अधिपतियों का मुख्य कर्तव्य अन्तर्भुक्त प्रान्तों के निवासियों को धर्मोपदेश करना तथा वैदिक मार्ग पर सुचारु रूप से चलने के लिये प्रेरित करना था। प्रत्येक मठ का कार्यक्षेत्र पृथक-पृथक था, परन्तु इनमें पारस्परिक सामञ्जस्य था। इनके मठाध्यक्ष आदि शङ्कराचार्य के प्रतिनिधिभूत, आचार्य पद पर रहते हुए अपने कर्तव्य का पालन करते हैं तथा शङ्कराचार्य नाम से प्रसिद्ध होते हैं।

यह सुमेरुमठ विद्याकेन्द्र काशी में विद्यापीठ के रूप में था। इसकी एक प्रशस्त आचार्य परम्परा थी जो कालक्रम से विद्या के ह्रास तथा यवनों द्वारा उत्तर भारत के आक्रान्त होते रहने के कारण ह्रास को प्राप्त होती गई और विद्या संन्यासियों में न रहकर केवल ब्राह्मणों में जीविका के रूप में रह गई। जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है–

"पुरा विद्वत्ताऽऽसीदुपशमवतां क्लेशहतये,
गताकालेनासौ विषयसुखसिद्धयै विषयिणाम् ।
इदानीं सम्प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्र-विमुखान्,
अहो कष्टं साऽपि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ।।

इस प्रकार कालक्रम से विलुप्तप्राय हो एक मठ मात्र हो प्रतिभासित होने लगे। उस सुमेरुपीठ का उद्धार काशी के विद्वानों तथा विश्ववन्द्य धर्मसम्राट, यतिचक्रचूडामणि अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ने किया। इस मठ के सुमेरुमठ का काशी में कैलासनामक प्रसिद्ध स्थान है अर्थात् ज्ञानार्जन का क्षेत्र है। काशी का मानसरोवर **बाह्यतीर्थ** तथा ध्यान काल में आभ्यन्तर **मानसरोवर तीर्थ** है। इस मठ के उपास्य देव निरञ्जन निष्कल्मष (अविद्या सम्पर्करहित) ब्रह्म हैं तथा उनकी शक्ति माया देवी हैं। इस मठ के नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के उपदेष्टा आचार्य ईश्वर अर्थात् सदाशिव विश्वनाथ हैं। इस मठ में पढ़ने वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की संख्या अनन्त है। इस मठ में शुकदेव, वामदेव आदि जीवन्मुक्तों का सर्वजन संवेद्य (जिसे सब लोग जानते हैं) प्रपठन (प्रकृष्टपठन) अर्थात् स्वाध्याय हुआ। यह मठ तथा इसके उपास्यदेव ब्रह्म रजोगुण से परे हैं। इस मठ में 'संज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस महावाक्य का विचार किया जाता है। इस वाक्य का अर्थ है कि ब्रह्म अनन्त-दिग्देश काल वस्तुकृत परिच्छेद से रहित है। ब्रह्म की माप दिशा, काल या किसी वस्तु से नहीं की जा सकती तथा सम्यग् मान स्वरूप है। इस मठ में नित्याऽनित्य विवेकपूर्वक आत्मस्वरूप की उपासना की जाती है। इस मठ में आत्मा आभ्यन्तर तीर्थ है, इस मठ में निवास का फल आत्मोद्धार तथा आत्म साक्षात्कार है। ऐसे मठ में हम संन्यास ग्रहण करेंगे।

इस सङ्कल्प वाक्य के अध्ययन से यह सुविदित हो जाता है कि काशी का सुमेरु मठ सर्वोच्च मठ है। इस मठ की प्रतिष्ठा काशी नगरी के साथ ही अनादि काल से है। इस मठ के प्रतिष्ठापक आचार्य साक्षात् भगवान् शङ्कर हैं। अतः स्पष्टतया, विना किसी संशय के यह कहा जा सकता है कि विद्याकेन्द्र काशी में स्थित इस मठ का आद्य शङ्कराचार्य ने पुनः प्रतिष्ठा तथा उद्धार किया। आज भी देश की श्रद्धालु जनता जन्म-मरण परम्परा की निवृत्ति के लिए काशीवास करती है। इसीलिए शास्त्रों में 'मरणं मङ्गलं यत्र, कृतकृत्यात्प्रतीक्षन्ते मृत्युं प्रियमिवातिथिम्, इह हि जन्तोः प्राणेषु उत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मोपदिशति' इत्यादि लिखा है।

श्री मठाम्नाय सेतु में भी काशी के सुमेरुमठ का निम्नलिखित वर्णन मिलता है–

पञ्चमस्तूर्ध्व आम्नायः सुमेरुमठ उच्यते ।
सम्प्रदायोऽस्य काशी स्यात् सत्यज्ञानमिदे पदे ।।
कैलासः क्षेत्रमित्युक्तं देवताऽस्य निरञ्जनः ।
देवी माया तथाचार्य ईश्वरोऽस्य प्रकीर्तितः ।।
तीर्थन्तु मानसं प्रोक्तं ब्रह्मतत्त्वावगाहितम् ।
तत्र संयोगमार्गेण संन्यासं समुपाश्रयेत् ।
सूक्ष्मवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत् ।।

यह श्रीमठाम्नायसेतु, मठाम्नायोपनिषद् के समान ही काशिक सुमेरुमठ की सिद्धि तथा स्थिति मे प्रमाण है। इस प्रकार यह काशी का सुमेरुमठ काशी के विद्वत्समाज के मान्य होने से सर्वमान्य है। मठाम्नायोपनिषत् में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार आज भी इसके प्रवर्तक आचार्य श्रीविश्वनाथ मरने के समय अध्यात्मविद्या का उपदेश करते हैं और उनके प्रतिनिधि पीठासीन शङ्कराचार्य श्री नरेन्द्रानन्द सरस्वती ब्रह्मविद्या का उपदेश करते हैं। इस पीठ का संरक्षण तथा संवर्धन आस्तिक जनता का कर्तव्य है।

□□

सुमेरुमठ काशी की आचार्य परम्परा

अपने काशीप्रवास में संन्यासी शङ्कराचार्य सर्वप्रथम मणिकर्णिका घाट के समीप ठहरे थे जो वर्तमान राजराजेश्वरी मठ था जो विष्णु स्वामी सतुआ बाबा के आश्रम का पूर्व रूप हो सकता है। यहीं शिव-शक्ति स्वरूप भगवान् शङ्कर तथा भगवती काली एवं भगवान् वेद व्यास द्वारा परीक्षोपरान्त धर्मसंस्थापनार्थ काशी में आदि आचार्य के रूप में अभिषिक्त हुए और काशी प्रथम शांकरपीठ और धर्म साम्राज्य की राजधानी बनी। यहाँ पहला मठ, सुमेरुमठ के नाम से स्थापित हुआ। जहाँ आचार्य विद्यादान करते रहे। यहीं उन्होंने पद्मपादाचार्य को अपना प्रथम आचार्य शिष्य बनाया जो शङ्कराचार्य के पश्चात् इस मठ के उत्तराधिकारी तथा धर्मस्थापनार्थ अन्यान्य मठों के स्थापना क्रम में प्राच्यमठ गोवर्धन मठ के शङ्कराचार्य हुए। कालान्तर में अन्य मठ भी स्थापित किये गये।

सुमेरुमठ की परम्परा पद्मपादाचार्य के द्वारा पुरी के सिंहासन को सम्हालने के बाद भी चलती रही :-

१.	भगवान् शङ्कर (विश्वनाथ)	
२.	आदि शङ्कराचार्य	५०९ ई.पू.
३.	पूज्यश्री पद्मपादाचार्य	५३१
४.	महादेवानन्दतीर्थ (प्रथम)	५६१
५.	ईश्वरानन्द	५९२
६.	महेश्वरानन्द	६३१
७.	सदानन्द (प्रथम)	६४३
८.	अद्वैतानन्द	६७७
९.	सच्चिदानन्द	६९८
१०.	वल्लभानन्द	७२७
११.	विमलानन्द	७५८

१२.	द्विजानन्द	७८१
१३.	मधुसूदन	८०४
१४.	धीरानन्द (प्रथम)	९७४
१५.	नारायण तीर्थ	१०२४
१६.	महादेवानन्द (द्वितीय)	१०२५
१७.	सर्वानन्द (प्रथम)	१०३१
१८.	अम्बिकानन्द	१०३५
१९.	चिदानन्द	१०६२
२०.	सदानन्द (द्वितीय)	१०७५
२१.	शिवानन्द (प्रथम)	११०२
२२.	वासुदेवानन्द (प्रथम)	१११६
२३.	महादेवानन्द (तृतीय)	११२८
२४.	सत्यदेवानन्द	११४०
२५.	धीरानन्द (द्वितीय)	११५८
२६.	रामानन्द (मलूकी के राजा वसन्त राय के गुरु)	११९०
२७.	महादेवान्द (चतुर्थ)	१२१५
२८.	अनुभवानन्द	१२४३
२९.	आत्मानन्द	१२६१
३०.	शान्त्यानन्द	१२६८
३१.	नित्यानन्द (प्रथम)	१३१२

३२.	मोहनानन्द	१३२५
३३.	परमानन्द	१३३६
३४.	ध्यानानन्द	१३५८
३५.	अभेदानन्द	१३६५
३६.	निगमानन्द	१३९४
३७.	स्वयंभुवानन्द	१४२३
३८.	महादेवानन्द (पंचम)	१४४८
३९.	अच्युतानन्द	१४७८
४०.	शिवध्यानानन्द	१४९७
४१.	जगदानन्द	१५०४
४२.	प्रज्ञानानन्द	१५०७
४३.	सर्वानन्द (द्वितीय)	१५१६
४४.	स्वरूपानन्द	१५२१
४५.	निरञ्जनानन्द	१५३६
४६.	महादेवानन्द (षष्ठ)	१५५७
४७.	स्वयंप्रकाशानन्द (काशीराज महीपनारायण सिंह के गुरु)	१५७५
४८.	पुरुषोत्तमानन्द	१५८४
४९.	सदाशिवानन्द	१५९८
५०.	वासुदेवानन्द (द्वितीय)	१६०७
५१.	हरिहरानन्द	१६१६

५२.	सत्यसन्धानानन्द	१६१९
५३.	ब्रह्मानन्द (प्रथम)	१६२४
५४.	राघवानन्द	१६२९
५५.	शिवानन्द (द्वितीय)	१६३५
५६.	विश्वेश्वरानन्द (द्वितीय)	१६३७
५७.	ब्रह्मानन्द (द्वितीय)	१६३९
५८.	कालिकानन्द	१६४५
५९.	सत्यज्ञानेश्वरानन्द	१६५५
६०.	परमात्मानन्द	१६५८
६१.	विशुद्धानन्द तीर्थ	१६६०
६२.	आनन्दबोधाश्रम	१६६२
६३.	नित्यानन्द सरस्वती (द्वितीय)	१६६५
६४.	महेश्वरानन्द सरस्वती	१९७२ तक
६५.	शङ्करानन्द सरस्वती	२८ मई १९९२ तक
६६.	**नरेन्द्रानन्द सरस्वती**	**१९९२ से निरन्तर**

❏❏

ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी सुमेरु पीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी नरेंद्रानंद सरस्वती जी महाराज की धर्म-यात्रा

अनादिकाल से लोक कल्याणार्थ परमार्थ मार्ग प्रशस्त करने और वर्णाश्रम मर्यादा का प्रतिपादन कर समाज में व्याप्त कुसंस्कारों के प्रशमनार्थ संतों का इस धराधाम में प्रादुर्भाव होता रहा है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस में लिखा है—जब जब होइ धरम कइ हानी। बाढ़हिं असुर महा अभिमानी। तब तब धरि प्रभुमनुज शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा। इससे पूर्व श्रीमद्भागवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन का प्रबोधन करते हुए कहा है-'यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे। इस प्रकार विचार करने पर और शास्त्रों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि जब भी आपराधिक व अराजक तत्त्वों का बिकास इस धरती पर हुआ है उसके विनाश के लिए भगवान् ने मानव रूप में अवतार लिया है। इन दैवी अवतारों के अतिरिक्त समय-समय पर सद्गुरु और संतों का प्रादुर्भाव भी भारत-भूमि में होता रहा है। इस संत शृंखला में शीर्षस्थ सुमेरुवत् संत आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य, जिन्हें काशी में भगवान् शिव ने स्वयं उद्बोधन कराया और आचार्य श्री के रूप में आशीर्वाद प्रदान कर धर्म (वर्णाश्रम) मर्यादा की रक्षा और सनातन धर्म के प्रचार-प्रसार का निर्देश किया था, अविस्मरणीय नाम है। वे स्वयं भगवान् शंकर के अवतार थे।

आज जगद्गुरु शंकराचार्य ने जहाँ एक ओर संतों संन्यासियों को आचार संहिता (मठाम्नाय उपनिषत्) से मर्यादित किया वहीं समस्त मानव मात्र को वर्णाश्रम मर्यादा का पालन करते हुए स्वधर्म के निर्वाह के साथ-साथ सुखी व शांत जीवन यापन का उपदेश किया। काशी को केंद्र मान कर उन्होंने समस्त भारतीय क्षेत्र में सात मठो की स्थापना कर सनातन धर्म के प्रचार प्रसार की पुष्ट व्यवस्था की,थी। देश में व्याप्त सम्प्रदायवाद को इससे काफी आघात लगा और द्वैत-अद्वैत के विवाद को त्याग कर लोग आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा प्रणीत अद्वैत मार्ग के अनुयायी हो गये।

वर्तमान में दिव्य ज्ञान एवं देहयष्टि संपन्न, सहज सरल, सच्चरित्र स्वामी नरेंद्रानंद सरस्वती जी महाराज जिन्हें वर्तमान सनातन धर्म एवं वर्णाश्रम मर्यादा की दुर्व्यवस्था ने क्षुब्ध कर दिया और उन्होंने आगे बढ़ कर श्रीकाशी सुमेरु पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य के पद को समलंकृत किया है। आचार्य श्री ने काशी में अध्ययन के साथ-साथ योग-साधना और अन्यान्य शक्ति साधना में अपनी किशोरावस्था व्यतीत की है। भारतीय अध्यात्म का गहन अध्ययन भी किया। वेद-वेदांग-वेदान्त, उपनिषदों, पुराणों के भी सांगोपांग स्वाध्याय में रत आचार्य श्री

वैदिक समाज व्यवस्था के स्थापन हेतु सतत् प्रयत्नशील हैं। इसके लिए गौ रक्षा, गौ सेवा व्रत, सनातन संस्कार अभियान, ब्रह्मचारियों के लिए विद्याध्ययन काल में आवास-भोजन-वस्त्र एवं अध्ययन सामग्री की व्यवस्था के साथ-साथ साधु-संतों, दण्डी-संन्यासियों के साथ धर्मयात्रा एवं उनकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति में बड़े उत्साह के साथ तत्पर रहते हैं।

स्वामी जी देश के विकास व समृद्धि के लिए आवश्यक-संस्कृत एवं संस्कृति के प्रति समर्पित भाव से अनेक अभियान चला चुके हैं। स्वामी जी की धारणा है कि भारतीय संस्कृति के विकास के लिए संस्कृत भाषा एवं संस्कृत विद्यालयों और विद्यार्थियों का पोषण आवश्यक है। अत: सरकार से वे समय-समय पर संपर्क करने के साथ-साथ प्रशासन पर रोष भी व्यक्त करने में नहीं चूकते। भारतीय सांस्कृतिक विरासतों के संरक्षण, पुनरुद्धार एवं पुनर्स्थापन हेतु स्वामी जी सतत् केंद्र और राज्य सरकार से व्यक्तिगत एवं पत्राचार के माध्यम से संपर्क में हैं। मध्यप्रदेश के दमोह में रुक्मिणी मंदिर और ऐतिहासिक एवं पौराणिक धारा नगरी स्थित भोजशाला से विस्थापित सरस्वती प्रतिमा के पुनर्स्थापन हेतु भारत सरकार से संपर्क बनाए हुए हैं। ज्ञातव्य हो कि दमोह के रुक्मिणी मंदिर में नीलम निर्मित रुक्मिणी की प्रतिमा सरकार के संग्रहालय में है और भोजशाला की सरस्वती प्रतिमा ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में है। इसके अतिरिक्त बांदा जनपद के मर्का ग्राम में राम मंदिर से उठाई गंई राम-जानकी की अष्टधातु की प्रतिमा, जो इन दिनों बांदा जनपद के कारागार में है, उसे पूर्व स्थान पर पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न जारी रखे हैं। आचार्य श्री इसके लिए धर्म-संसद, धर्म यात्राओं का आयोजन करते रहते हैं और अपने प्रवचनों में स्वधर्म का आचरण करने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। महाकुंभ पर्वों, चाहे वह हरिद्वार का हो, चाहे प्रयाग का अथवा उज्जैन का, अपनी धार्मिक-आध्यात्मिक प्रतिभा के कारण संतों-संन्यासियों, सद्गृहस्थों तथा समाचार-पत्रों और इलेक्ट्रॉनिक प्रचार माध्यमों के प्रतिनिधियों के आकर्षण बने रहते हैं। जन-मानस में सनातन संस्कार और धार्मिक चेतना जागृत करना उनके कार्यक्रमों की वरीयता सूची में है।

सनातन धर्म के प्रति जनमानस को जागरुक करने के लिए आचार्यश्री देशव्यापी धार्मिक यात्रा भी निकाल चुके हैं। वैसे तो क्षेत्रीय, प्रांतीय और अंतर्प्रांतीय धर्म यात्राएं तो सामान्यत: करते ही रहते हैं।

संतश्री की ओजस्वी प्रेरक वाणी से न केवल हिन्दू जन ही प्रभावित होते हैं अपितु सिख, मुसलमान भी पर्याप्त संख्या में प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। विगत वर्ष बिहार की एक धर्म सभा में आचार्यश्री के अमृत बचनों से प्रभावित हो कर एक मुस्लिम कसाई (गौकशी करने वाले) समूह ने दूसरे दिन बिना किसी से कुछ कहे बड़े सबेरे ही अपना गौकशी का स्थान स्वत: उखाड़ दिया और स्वामीजी के पास आकर नत मस्तक हो अपने अपराधों के लिए क्षमा याचना की। संतश्री की अनेक यात्राओं में इस प्रकार की इतरधर्मियों द्वारा समर्पण की घटनाएँ प्राय: होती रहती हैं। अभी हाल ही में आचार्य श्री के नेतृत्व में 'सनातन संस्कार अभियान दिग्विजय यात्रा

क्रम में राजस्थान के बाड़मेर जिले के बालोतरा तहसील के पाटोदी, परेव, एवं बैरीयां आदि स्थानों के मुसलमानों ने स्वामीजी के प्रवचनों से प्रभावित होकर शीघ्र ही अपने क्षेत्र में गौ रक्षा, गौपालन-संवर्धन हेतु गौशाला निर्माण का संकल्प लिया है। इसके अतिरिक्त समाज के अन्य समुदायों के लोगों ने भी गौशाला निर्माण कर गोपालन-संरक्षण-संवर्धन का संकल्प लिया है। उनके प्रस्ताव के अनुसार ये गौशालाएं एक वर्ष के अंदर ही तैयार हो जाएंगी।

विगत पांच वर्षों से आचार्य श्री गंगा निर्मलीकरण के लिए प्रयत्नशील हैं। एतदर्थ उन्होंने गंगा तटवर्ती क्षेत्रवासियों को जागृत कर गंगा जल में किसी प्रकार की गंदगी प्रवाहित न करने के लिए प्रेरित किया है। गंगोत्री से गंगा सागर तक गंगा-जल स्वच्छ और निर्मल मिले, इसके लिए एक वृहत् अभियान का संचालन साधु-संत, सद्गृहस्थ एवं संन्यासियों के द्वारा चलाया जा रहा है। प्रयाग माघ स्नान के दौरान देश की धर्मप्राण जनता को पवित्र निर्मल गंगा की धारा में स्नान का अवसर मिले इसके लिए संत श्री ने राष्ट्रीय संत सम्मेलन प्रयाग माघ मेला के मंच से गंगा निर्मलीकरण अभियान का श्रीगणेश करते हुए प्रत्येक भारतीय के लिए इसके प्रति समर्पित भाव से कार्यरत होने का आह्वान किया था। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, स्वास्थ्य मंत्री और गंगातटवर्ती प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों से संपर्क कर प्रशासनिक स्तर पर इस कार्य संपादन में आवश्यक कदम उठाने के लिए प्रेरित किया और परामर्श दिया है। गंगा तटीय महानगरों के औद्योगिक प्रतिष्ठानों से बहने वाले अपशिष्ट युक्त जल की आवक रोकने के लिए औद्योगिक प्रतिष्ठानों में प्रदूषण नियंत्रण एवं अपशिष्ट युक्त जल संशोधन उपकरण (संयंत्र) लगाने की व्यवस्था अनिवार्य करने के लिए सतत् प्रशासन पर दबाव बनाये हुए हैं। आचार्य श्री का कहना है कि जहाँ शुद्धिकरण संयंत्र लगाना संभव न हो, वहाँ के जल को एक स्थान पर संग्रहीत कर सीधे कृषि सिंचाई के उपयोग में लाया जाय, जिससे कृषि उत्पाद में वृद्धि हो सकती है। ऐसे बैरेजों से वैकल्पिक ऊर्जा भी प्राप्त की जा सकती है। अतएव प्रशासनिक स्तर पर उसका सीधे गंगा में प्रवाह रोक कर अन्य वैकल्पिक उपयोग के लिए कठोर नियम बना कर औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा उनका कड़ाई के साथ पालन करने के लिए बाध्य करना चाहिए।

भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों के प्रचारार्थ मकर संक्रान्ति से माघ पूर्णिमा तक प्रयाग संगम क्षेत्र में शिविर लगाकर विविध आध्यात्मिक, धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन एवं सत्संग-प्रवचन के माध्यम से जनता को स्वधर्म पालन कर शांत एवं सुखी जीवन यापन की प्रेरणा प्रदान की जाती है। जहां प्रतिदिन हजारों श्रद्धालु लाभान्वित होते हैं।

आचार्यश्री की काशी-प्रयाग के मध्य एक ऐसे आश्रम का निर्माण करने की महत्त्वाकांक्षी योजना है, जहाँ वेद-वेदांग एवं भारतीय सनातन धर्म-संस्कार की शिक्षा प्रदान की जा सके, गौशाला का निर्माण कर गौ संरक्षण व संवर्धन किया जा सके, विविध प्रकार के यज्ञानुष्ठान, कर्मकाण्ड की व्यावहारिक शिक्षा प्रदान कर उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का विद्वान बनाया जा सके और इसके साथ-साथ सामान्य जनता के लिए निःशुल्क औषधालय एवं अस्पताल की व्यवस्था

की जा सके। यह सब व्यवस्थाएँ एक ही परिसर में व्यवस्थित रूप से संचालित हों, जिससे देश में स्वस्थ। प्रबुद्ध पीढ़ी का विकास हो तथा भारतीय संस्कृति और संस्कृत की रक्षा हो।

वह नववर्ष की परम्परा हो या राममन्दिर आन्दोलन का अवसर हो, इन्होंने सुप्त जनता और स्वार्थी धर्म विरोधियों को समान रूप से सचेत किया है और कर रहे हैं। यदि धर्म के नाम पर राजनीति बन्द हो जाय तो धर्म की राजनीतिक परंपरा चल पड़ेगी, इस हेतु धर्म शास्त्रों के रक्षण, देश-काल, परिस्थितियों के अनुरूप धार्मिक व्यवस्थाओं का प्रतिपादन अपेक्षित जान कर आपने मातृशक्ति को भी जागृत करने की चेष्टा की है।

आज धर्म-साम्राज्य की सीमा भारत तक ही सीमित नहीं रही, इस दृष्टि से इन्होंने अपने समय के अनुरूप विश्वगुरुओं की भी प्रतिष्ठा की है। आज स्वामी महेश्वरानन्द पुरी, स्वामी करुणानन्द सरस्वती, स्वामी तारकेश्वरानन्द सरस्वती आदि जैसे विश्वगुरु भारत और भारत के बाहर इन्हीं के निर्देशन में आद्यशंकराचार्य की भावना के अनुरूप धर्मोपदेश और धर्मसाम्राज्य के विस्तार में संलग्न हैं। समय-समय पर अनेक विद्यार्थी और विद्वान् इनके आशीर्वाद की छत्रछाया में स्वकार्यरत रह ज्ञान तथा विवेक को समृद्ध कर रहे हैं।

आज धर्म विरोधी शङ्कराचार्य परम्परा पर अपने ही लोगों के स्वार्थलिप्सा से ग्रस्त हो समय-समय पर आक्षेप लगा रहे हैं। राजदण्ड का भय सर्वथा नष्ट हो गया है। धर्मदण्ड में जनास्था को विधर्मियों ने पहले से ही दुर्बल बनाने का प्रयास प्रारंभ किया हुआ है। इसी पीड़ा से ग्रस्त आदि शङ्कराचार्य ने देशाटन कर धर्म को व्यक्तिगत की अपेक्षा समाज और राष्ट्र के नियमन का आधार बनाया। आज वही पीड़ा पुनः आचार्यश्री को कर्मक्षेत्र में प्रेरित कर रही है, जिससे वे कहीं भी किसी भी अवसर पर धार्मिक जन का नेतृत्व करने से नहीं चूकते। एवं राष्ट्र की सीमा से पार जाकर हिन्दू राष्ट्र नेपाल या विश्व में मानवता का उत्पीड़न एवं आतंकवाद उन्हें क्षुब्ध कर देता है। शाङ्करमतानुयायियों के आपसी द्वन्द्व एवं सर्वाधिकार की लिप्सा भी उनकी चिन्ता का विषय है। जिसे लेकर वे समय-समय पर सन्त महात्माओं से संपर्क करते रहे हैं।

अपने छोटे वय में महत्तम दायित्व निर्वाह का सामर्थ्य काशी विश्वनाथ की कृपा का ही प्रसाद है। यदि आचार्यगण और धर्मप्राण जनता विश्वेश्वर के प्रतिनिधि की पीड़ा को समझ कर धर्मदण्ड के साम्राज्य-स्थापन में सक्रिय हो जाय तो समस्त विश्व सब प्रकार के संकट से मुक्त हो जाय। काशी सुमेरुमठ एवं सनातन धर्म की अभ्युन्नति में विश्व कल्याण निहित है क्योंकि विश्वेश्वर की कामना है कि–

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।।

□□

मठाम्नायोपनिषत्

ॐ ऊर्ध्वाम्नाय-गुरूपदेशभुवनाकार-सिंहासनसिद्धाचार-वन्दितं समस्त-वेद-वेदान्त-सारनिर्माणं परात्परं निरञ्जन-ज्ञानार्थ-षट्चक्र-जाग्रतीमयं परावाचा परात्परं सर्वसाक्षिधृतं चिन्मयं ज्योतिर्लिङ्गं निराकारं गलितं पूर्णप्रभाशोभितं शान्तं चन्द्रोदयनिभं भजमनस्तच्छ्री-गुरुचैतन्यं प्रणमामि।

ऊर्ध्वाम्नायस्थ गुरु के उपदेश से भुवन के आकारवाले सिंहासन पर सिद्ध आचारवालों से वन्दित, समस्त वेद और वेदान्त के सार के निर्माता, परात्पर निरञ्जन, उसके ज्ञान के लिए षट्चक्र को जाग्रत् करनेवाले परा वाक् से जो पर, उससे भी पर, जो समस्त साक्षियों से धृत हैं, चिन्मय हैं, ज्योतिर्लिङ्ग हैं, निराकार हैं, द्रवित हैं, पूर्ण प्रभा से शोभित हैं, चन्द्रोदय के समान शान्त हैं, उन चैतन्यरूपी गुरु को प्रणाम करता हूँ। हे मन, तू उसे प्राप्त कर ले।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

जो पद अखण्डमण्डल के आकार में है, जो चर तथा अचर (स्थावर और जङ्गम) में व्याप्त है, उस पद (स्थान) को जिसने दिखाया है, उन श्री गुरु जी महाराज को मेरा प्रणाम है।

ॐ प्रथमे पश्चिमाम्नायः शारदामठः कीटवारिसम्प्रदायः तीर्थाश्रमपदं द्वारिकाक्षेत्रं सिद्धेश्वरो देवः भद्रकाली देवी ब्रह्मस्वरूपाचार्यः गङ्गागोमतीतीर्थं स्वरूपब्रह्मचारी सामवेदप्रपठनं 'तत्त्वमसि' इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्य-विवेकेनात्मन उपास्तिः आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये। ॐ नमो नारायणायेति।

प्रथम पश्चिमाम्नाय **शारदामठ**, सम्प्रदाय **कीटवारि**, **तीर्थ और आश्रम** पद, **द्वारिका** क्षेत्र, देवता **सिद्धेश्वर**, देवी **भद्रकाली**, आचार्य **ब्रह्मस्वरूप**, तीर्थ-**गंगा**, **गोमती**, ब्रह्मचारी के नाम के आगे **स्वरूप**, सामवेदाध्ययन, **'तत्त्वमसि'** महावाक्य विचार, **नित्यानित्य विवेक** द्वारा आत्मा की उपासना करना, "आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार के लिए तथा आत्मा के साक्षात्कार के लिए, संन्यास ग्रहण करूँगा" यह सङ्कल्प वाक्य है। 'ॐ नमो नारायणाय' यह समाप्तिसूचक वाक्य है।

ॐ द्वितीये पूर्वाम्नायः गोवर्द्धनमठः भोगवारिसंप्रदायः वनारण्य पदं पुरुषोत्तमं क्षेत्रं जगन्नाथः विमलादेवी भद्रपद्मपादाचार्यः महोदधितीर्थं प्रकाशब्रह्मचारी ऋग्वेदप्रपठनं तमेवैक्यं

जानथ 'प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मन उपास्तिः आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ।

द्वितीय पूर्वाम्नाय **गोवर्धन** मठ, **भोगवारि** सम्प्रदाय, **वन तथा अरण्य** पद, **पुरुषोत्तम** क्षेत्र, **जगन्नाथ** देवता, **विमला** देवी, आचार्य **भद्रपद्मपाद**, तीर्थ **महोदधि** (यह दक्षिण समुद्र की संज्ञा है) ब्रह्मचारी के नाम के आगे **प्रकाश**, **ऋग्वेदाध्ययन आत्मैक्य ज्ञान** के लिये **प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म** इत्यादि महावाक्यों का विचार, **नित्य** और **अनित्य** के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, ''आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार के लिये आत्मा के साक्षात्कार के लिए संन्यास ग्रहण करूँगा'' यह सङ्कल्प वाक्य है । 'ॐ नमो नारायणाय' यह समाप्तिसूचक वाक्य है ।

ॐ तृतीये उत्तराम्नायः ज्योतिर्मठः आनन्दवारिसम्प्रदायः गिरिपर्वतसागरपदानि बदरिकाश्रमक्षेत्रं नारायणो देवता पूर्णागिरीदेवी त्रोटकाचार्यः अलकनन्दातीर्थम् आनन्दब्रह्मचारी अथर्ववेदपठनं तमेवैक्यं जानथ 'अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादिवाक्यविचारः नित्यानित्य-विवेकेनात्ममन उपास्तिः आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ।

तृतीय उत्तराम्नाय **ज्योतिर्मठ**, **आनन्दवारि** सम्प्रदाय, **गिरिपर्वत** और **सागर** पद, **बदरिकाश्रम** क्षेत्र, **नारायण** देवता, **पूर्णागिरी** देवी, आचार्य **त्रोटक**, तीर्थ **अलकनन्दा** (हिमालय में गङ्गा की एक धारा का नाम) ब्रह्मचारी के नाम के अन्त में **आनन्द**, **अथर्ववेदाध्ययन**, उसी एकता के ज्ञानार्थ **'अयमात्मा ब्रह्म'** इस महावाक्य का विचार, **नित्य** और **अनित्य** के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, ''आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार के लिये तथा आत्मसाक्षात्कार के लिये संन्यास ग्रहण करूँगा'' यह सङ्कल्प वाक्य है। 'ॐ नमो नारायणाय' यह समाप्तिसूचक वाक्य है ।

ॐ चतुर्थे दक्षिणाम्नायः शृङ्गेरीमठः भूरिवारिसम्प्रदायः सरस्वतीभारतीपुरी चेति पदानि रामेश्वरक्षेत्रं आदिवराहो देवता कामाक्षी देवी पृथ्वीधराचार्यः तुङ्गभद्रातीर्थं चैतन्यब्रह्मचारी यजुर्वेदप्रपठनं तमेवैक्यं जानथ 'अहं ब्रह्माऽस्मि' इत्यादि-वाक्य-विचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मन उपास्तिः आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणाय इति ।

चतुर्थ दक्षिणाम्नाय **शृङ्गेरी** मठ, **भूरिवारि** सम्प्रदाय, सरस्वती, भारती, पुरी ये तीन पद, **रामेश्वर** क्षेत्र, **आदिवराह** देवता, **कामाक्षी** देवी, **पृथ्वीधर** आचार्य, **तुङ्गभद्रा** तीर्थ, **चैतन्य** ब्रह्मचारी, **यजुर्वेदाध्ययन**, आत्मा की एकता का ज्ञान प्राप्त करना, **'अहं ब्रह्मास्मि'** इस महावाक्य का विचार, **नित्य** और **अनित्य** वस्तु के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, ''आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार के लिये तथा आत्मा के साक्षात्कार के लिए संन्यास ग्रहण करूँगा'' यह सङ्कल्प वाक्य है। 'ॐ नमो नारायणाय' यह समाप्तिसूचक वाक्य है।

ॐ पञ्चमे ऊर्ध्वाम्नायः सुमेरुमठः काशीसम्प्रदायः जनक-याज्ञवल्क्यादि-शुक-वामदेवादि जीवन्मुक्ताः एतत्सनक-सनन्दन-कपिल-नारदादिब्रह्मनिष्ठा नित्यब्रह्मचारी कैलासक्षेत्रं मानसरोवरं

तीर्थं निरञ्जनो देवता मायादेवी ईश्वराचार्यः अनन्तब्रह्मचारी शुकदेववामदेवादिजीवन्मुक्तानां सुसंवेदप्रपठनं परोरजसेऽसावदों 'संज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि वाक्यविचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मन उपास्तिः आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ।

पञ्चम ऊर्ध्वाम्नाय **सुमेरुमठ काशी** सम्प्रदाय, जनक, याज्ञवल्क्य, शुकदेव, वामदेव आदि जीवन्मुक्त, सनक, सनन्दन, कपिल, नारद आदि ब्रह्मनिष्ठ, नित्य ब्रह्मचारी अर्थात् बालब्रह्मचारी, कैलास क्षेत्र, मानसरोवर तीर्थ, **निरञ्जन देवता, माया** देवी, **ईश्वर** आचार्य, **अनन्त** ब्रह्मचारी, **शुकदेव, वामदेव आदि जीवन्मुक्तों के सुन्दर अनुभवों का अध्ययन, 'परोरजसे सावदो, संज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** इत्यादि वाक्यविचार, **नित्य** और **अनित्य** वस्तु के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, "आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार के लिये तथा साक्षात्कार के लिए संन्यास ग्रहण करूँगा" यह सङ्कल्प वाक्य है। 'ॐ नमो नारायणाय' यह समाप्ति सूचक वाक्य है।

ॐ षष्ठे आत्माम्नायः परमात्मा मठः सत्यसुसंप्रदायः नाभिकुण्डलिक्षेत्रं त्रिकुटीतीर्थं हंसो देवी परमहंसो देवता अजपा सोऽहं महामन्त्रः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराद्याः जीवब्रह्मचारी हंसविद उपास्तिः, उपाधिभेदसंन्यासार्थं ज्ञानसंन्यासग्रहणं करिष्ये । ॐ नमो नारायणायेति ।

षष्ठ आत्माम्नाय, **परमात्मा** मठ, **सत्य** सुसम्प्रदाय, **नाभि-कुण्डली** क्षेत्र, **त्रिकुटी** तीर्थ, **हंसो देवी, परमहंस** देवता, **अजपा सोऽहं** महामन्त्र, **ब्रह्मविष्णुमहेश्वर** आदि (ब्रह्मनिष्ठ) जीवब्रह्मचारी, "**हंसविद** की उपासना, उपाधि भेद के संन्यास के लिए ज्ञानसंन्यास का ग्रहण करूँगा" यह सङ्कल्प वाक्य है। 'ॐ नमो नारायणाय' यह समाप्तिसूचक वाक्य है।

ॐ सप्तमे जम्बूद्वीपः सम्यग्ज्ञानं शिक्षा न सूत्रं वेद्यवेदकः श्रद्धानदी विमलातीर्थं आत्मलिङ्गशान्त्यर्थे विचारः नित्यानित्यविवेकेनात्मन उपास्तिः आत्मतीर्थे आत्मोद्धारार्थे साक्षात्कारार्थे संन्यास-ग्रहणं करिष्ये । ॐ नमोनारायणायेति ।

सप्तम **जम्बू-द्वीप, सम्यक् ज्ञान शिखा (न)** यह सूत्र है जो वेद्य का वेदक है, **श्रद्धानदी विमलातीर्थ, आत्मलिङ्ग** की शान्ति का विचार, **नित्य** और **अनित्य** वस्तु के विवेक द्वारा आत्मा की उपासना करना, "आत्मतीर्थ में आत्मा के उद्धार के लिए तथा साक्षात्कार के लिए संन्यास ग्रहण करूँगा" यह संकल्प वाक्य है। 'ॐ नमो नारायणाय' यह समाप्तिसूचक वाक्य है।

□□

मठाम्नाय-विमर्श

भगवत्पूज्यपाद आद्यशङ्कराचार्य द्वारा संस्थापित मठों के विषय में विभिन्न लोग विभिन्न प्रकार की युक्तियों को उपस्थापित करते हुए स्वाभिमत मठ को ही आचार्य-प्रस्थापित बताया करते हैं। आचार्य शङ्कर के प्रादुर्भावकालनिर्णय के विषय में भी उक्त पद्धति के आधार पर स्वाभिमत काल को ही प्रदर्शित करते हैं। परिणामस्वरूप ईशा से लगभग ५०० वर्ष पूर्व से ८वीं शताब्दी तक का काल विभिन्न ढंग से आचार्य प्रादुर्भावकाल से सम्बन्द्ध विभिन्न स्थलों में पढ़ने को मिलता है। इसी प्रकार की पद्धति मठाम्नायों के विषय में दृष्टिगोचर होती है, अतः इदमित्थमेव रूप से कहना कठिन ही है। इन्हीं सब कारणों से काशीस्थ ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरुमठ के निर्णय में भी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। व्यर्थ विवाद में पड़ कर समय एवं शक्ति का अपव्यय करना अनभीष्ट होने के कारण आद्यशङ्कराचार्यप्रणीत मठाम्नायोपनिषद् एवं मठाम्नाय सेतु के आधार पर शाङ्कर आम्नायमठों का संक्षिप्त परिचय यहाँ पर हम उपस्थित कर रहे हैं। मठाम्नायोपनिषद् में सात आम्नायों का निरूपण है। ये हैं—पश्चिमाम्नाय, पूर्वाम्नाय, उत्तराम्नाय, दक्षिणाम्नाय, ऊर्ध्वाम्नाय, आत्माम्नाय तथा निष्कलाम्नाय।

कतिपय लोगों का कथन है—आम्नाय मठ केवल चार हैं। यह उक्ति आचार्य शङ्कर द्वारा रचित मठाम्नायोपनिषत् एवं सेतु के विरुद्ध है। शृङ्गेरीमठीय 'श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श' नामक पुस्तक के ३०५ पृष्ठ में लिखा है—"आचार्य शङ्कर द्वारा रचित आम्नाय स्तोत्र या सेतु में सात आम्नाय का ही उल्लेख है और ऊर्ध्वाम्नाय ज्ञानगोचर होने से काञ्ची का दृष्टिगोचर आम्नाय शास्त्र सम्मत नहीं है। ऊर्ध्वाम्नाय भी काञ्ची मठ का नहीं हो सकता है चूँकि काशी को भू कैलाश माना गया है और जो 'त्रिकण्टक विराजते' है और कुछ विद्वान् एवं मान्य पुस्तकें ऊर्ध्व के लक्षणार्थ से काशी के सुमेरुमठ को ऊर्ध्व मानते हैं।'...यदि मान भी लें कि ऊर्ध्वाम्नाय का लक्षणार्थ से दृष्टिगोचर मठ बना लिया गया हो तो भी काशी का सुमेरुमठ ही ऊर्ध्व बन सकता है नं कि दक्षिणाम्नाय काञ्ची।"

मठाम्नायोपनिषत् एवं मठाम्नाय सेतु के अनुसार आम्नाय मठ सात हैं यह बात निर्विवाद सिद्ध है, अतएव यतिचक्रचूड़ामणि अनन्त श्रीविभूषित धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज ने बताया है कि "सुमेरु पीठ शास्त्रीय है तथा मठाम्नाय उपनिषद् द्वारा अनुमोदित है" (सन्मार्ग २० अगस्त १९८०)।

कुछ लोगों का कथन है कि ऊर्ध्वाम्नाय ज्ञानगोचर ही है, दृष्टिगोचर नहीं है जैसा कि "श्रीमज्जगद्गुरुशाङ्करमठविमर्श" के ३०३ पृष्ठ में लिखा है, "अर्थात् तीन आम्नाय ऊर्ध्व, आत्मा, निष्कल तीनों ज्ञानगोचर हैं और बाकी चार आम्नाय दृष्टिगोचर चार दिशायें हैं। मठाम्नायानुसार दृष्टिगोचर दिशा चार ही का वर्णन है और तीन ज्ञानगोचर हैं।"

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि आद्यशङ्कराचार्यविरचित मठाम्नायोपनिषत् एवं सेतु में ज्ञानगोचर या दृष्टिगोचर शब्द का उल्लेख नहीं है, अतः ज्ञानगोचरादि की कल्पना अप्रामाणिक है। उपर्युक्त पुस्तक में एक श्लोक पाठान्तर रूप से मिलता है।

"अथोर्ध्वशेषा-आम्नायास्ते विज्ञानैकविग्रहाः।

अथोद्र्ध्वशेषगौणा ये तेऽपि ज्ञानेन सिद्धिदाः।।"

उपर्युक्त कल्पना का आधार यही श्लोक है। इस श्लोक की गणना मठाम्नायसेतुस्थ श्लोकों में नहीं है, अतः अवश्य ही यह आधुनिक एवं प्रक्षिप्त है।

अब हम तथाकथित कल्पित दृष्टिगोचर या ज्ञानगोचर पर संक्षिप्त विचार उपस्थित करते हैं—दृष्टिगोचर शब्द का अर्थ—चक्षुरिन्द्रियजन्यविषय अथवा सामान्यतः इन्द्रियजन्यज्ञानविषय या चक्षुरिन्द्रियगोचर है। प्रथम तृतीयविकल्पपक्षमें वाराणसेय सुमेरुमठ भी दृष्टिगोचर है। तृतीयविकल्पमें पुनः प्रश्न होता है—यत्किञ्चिच्चक्षुरिन्द्रियगोचर या यावच्चक्षुरिन्द्रियगोचर ? प्रथमपक्ष गोवर्द्धनादिमठाद्यन्तर्भाविणाव्याप्ति-दोषग्रस्त। द्वितीयपक्ष असम्भवदोषग्रस्त होने से त्याज्य है।

ज्ञानगोचरमठ की तथाकथित कल्पना सर्वथा अयौक्तिक है। पाठक विचार करें, यदि तीन मठ ज्ञानगोचर हैं, तो अन्य चार मठ अज्ञानगोचर हैं। यह बात अर्थतः सिद्ध हो जाती है, अतः अन्य चार मठ अज्ञानगोचर होने के कारण **अप्रमाण** एवं अग्राह्य हो जायेंगे। अपि च ज्ञानगोचर शब्द का क्या अर्थ है ? यत्किञ्चित्—ज्ञानगोचर अथवा यावज्ज्ञानगोचर ? प्रथम पक्ष ठीक नहीं। कारण यत्किञ्चिज्ज्ञान का विषय होने के कारण शृङ्गेरी आदि मठ भी ज्ञानगोचर ही हैं। द्वितीय पक्ष असम्भवदोषग्रस्त होने से पराहत है। यहाँ ज्ञान शब्द से आत्मज्ञान या तद्व्यक्तिरिक्त ज्ञान विवक्षित है। इसमें प्रथमपक्ष असंगत है। कारण सुमेरुमठ काशीसम्प्रदाय आदि **आत्मज्ञानाविषय** होने के कारण ज्ञान-गोचर नहीं हो सकते। द्वितीय पक्ष द्वारिकादि मठान्तर्भाविणातिव्याप्त होने से सर्वथा अग्राह्य है।

मठों के विषय में ज्ञानगोचरादि की युक्ति तथा प्रमाणविरहित कल्पना भी शास्त्रज्ञ विद्वान् की नहीं की जा सकती, कारण—,मठ वह हैं जहाँ पर छात्रादि अध्ययन करते हुए निवास करते हैं—'मठश्छात्रादिनिलय:' (अमरकोष २-२-८)। तथाकथित ज्ञानगोचर मठ दृष्टिगोचरताशून्यस्थान क्या मठशब्दवाच्य हो सकता है? मठ शब्द 'मठ मदनिवासयो:' धातु से 'हलश्च' सूत्र से घञ् प्रत्ययान्त है, संज्ञापूर्वकत्वात् वृद्धि नहीं होती है, अत: मठों के विषय में ज्ञानगोचरादि की तथाकथित कल्पना सर्वथा युक्ति एवं मठाम्नायोपनिषद् से बहिर्भूत होने के कारण अप्रामाण्यज्ञानास्कन्दित तथा अग्राह्य है।

पाठकगण विचार करें—यदि चार आम्नाय मठों की ही स्थापना शङ्करावतार आचार्य शङ्कर द्वारा हुई थी, ऐसा माना जाय, तो धर्मराज्यशासन क्षेत्रों में अव्यावहारिकता का दोष स्पष्ट रूप से प्रतिभासित न होगा। यह बात सुविदित तथा सुनिश्चित है कि भारतवर्ष में धार्मिक एवं सांस्कृतिक धारा की एकसूत्रता तथा अविच्छिन्नता आचार्य शङ्कर को सर्वथा अभीष्ट थी, अतएव भारत के सुदूर स्थानों में मठ स्थापन कार्य उन्होंने सम्पादित किया।

राजनीतिक दृष्टि से भारत की राजधानी दिल्ली (Delhi) अतीत में थी, वर्तमान में है, भविष्य में भी हो सकेगी, परन्तु धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की राजधानी वाराणसी या काशी ही थी, है, और यावच्चन्द्रदिवाकर रहेगी, अत: वाराणसी में भी आचार्य शङ्कर ने मठ की स्थापना की थी। उस मठ का नाम सुमेरुमठ है।

मठाम्नाय से सम्बद्ध ग्रन्थों के अध्ययन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि—काशीस्थ ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरु मठ निश्चित रूप से आद्यशङ्कराचार्य द्वारा संस्थापित था। Shri Sankara and Sankarite Institutions (शङ्कराचार्य और उनकी संस्थाएँ) नामक पुस्तक में श्री रामेश्वरानन्द तीर्थ दण्डिस्वामी, ओंकारमठ, वाराणसी, स्वामी दत्तात्रेयानन्द सरस्वती, गुरुदत्तात्रेय मठ वाराणसी, श्री शिवनाथ पुरी जी महन्त अन्नपूर्णा मन्दिर वाराणसी, श्री महावीर प्रसाद जी अध्यक्ष काशी विश्वनाथ मन्दिर वाराणसी, महामहोपाध्याय पं. प्रमथनाथ तर्कभूषण, महामहोपाध्याय पण्डित आनन्दाचरण तर्कचूड़ामणि, महामहोपाध्याय पण्डित वामाचरण न्यायाचार्य आदि ख्यातिलब्ध २४ विद्वानों एवं सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों ने काशीस्थ सुमेरुमठ को आद्यशङ्कराचार्य द्वारा संस्थापित स्वीकार करते हुए लिखा है—"During his stay at the holi city of Kashi Paramahans Parivrajakcharya Jagadguru the Adya Sankaracharya maharaj

established the sumeru Matha" आद्य शङ्कराचार्य महाराज जी ने वाराणसी के अपने प्रवास काल में सुमेरु मठ की स्थापना की थी।

यहाँ पर एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है—'श्रीमज्जगद्‌गुरु शाङ्कर मठ विमर्श' ग्रन्थ में शासनाधीन धर्मराज्य सीमा शीर्षक तालिका के अन्तर्गत गोवर्द्धन मठ के अधीन—अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, उत्कल प्रदेश हैं। शृङ्गेरी शारदामठ के अधीन—आन्ध्र, द्रविड, केरल, कर्णाटक प्रदेश, द्वारका शारदामठ के अन्तर्गत—सिन्धु, सौवीर, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, ज्योतिर्मठ के अन्तर्गत—कुरु, कश्मीर, पाञ्चाल, कम्बोज प्रदेश हैं। भारत का शेष भाग—यथा आर्यावर्त का उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार का विस्तृत भाग किस मठ के धर्मराज्यशासनाधीन हैं? इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। क्या वे प्रदेश अनार्यों के लिए सुरक्षित कर दिये गये थे? हम पूर्व में संकेत कर चुके हैं कि धार्मिक दृष्टि से भारत की राजधानी काशी है। धर्म की राजधानी में आचार्य ने कोई व्यवस्था नहीं की, यह कल्पना कैसे उठ सकती है? अतः आचार्य शङ्कर ने यहाँ पर भी ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरु मठ की स्थापना की और तत्तन्मठाधीन प्रदेशों के अतिरिक्त भूभाग पर केन्द्रीय सुमेरुमठ का धर्मशासन था।

तात्पर्य यह कि, 'सुमेरुमठ का काशीस्थ होने के कारण प्रभाव विस्तार समस्त भारत में था तथा अवशिष्ट भाग में तो था ही। आन्तरिक स्वातन्त्र्य वर्तमान में भारत में प्रत्येक प्रदेश में है। केन्द्र (दिल्ली) कोई हस्तक्षेप नहीं करता, परन्तु केन्द्र का विरोध कर कोई भी प्रदेश सर्वथा स्वतन्त्र नहीं हो सकता। ठीक यही स्थिति शासनाधीनधर्म-राज्यसीमा के विषय में समझनी चाहिए, अतः काशी एवं काशीस्थ सुमेरुमठ का स्थान सुमेरु तुल्य है। जो लोग इस मठ का विरोध करते हैं वे अपने अज्ञान तथा हठवादितामात्र का परिचय देते हैं।

वर्तमान में मठानुशासन भी सुव्यवस्थित नहीं है। उदाहरणार्थ गोवर्धनमठ के आचार्य पद पर वन या अरण्यनामा संन्यासी का, शारदामठ में आश्रम या तीर्थनामा, ज्योतिर्मठ में पर्वतनामा, शृङ्गेरीमठ में भारतीनामा संन्यासी का अभिषेक होना चाहिए—जैसाकि मठाम्नाय सेतु में वर्णित है—

शारदामठ आचार्य आश्रमाख्यो बहूत्तमः।
गोवर्धनस्य विज्ञेयोऽरण्यनामा विचक्षणः।। ३६ ।।
ज्योतिर्मठस्य सततं पर्वताख्यो निगद्यते।
शृङ्गवेरमठे नित्यं भारती बहुभावनः।। ३७ ।।

इस व्यवस्था के परिवर्तन का निषेध वचन भी वहीं पर उल्लिखित है, यथा—'नात्र व्यत्यय आदेयः कदाचिदपि शीलिना (३८)' अर्थात् आचार्यपद पर मठाम्नायसेतु या मठानुशासन के आधारपर आश्रम आदि का होना श्रेयस्कर है।

कुछ पण्डितंमन्य लोग कहते हैं : चार वर्ण, चार आश्रम हैं, अतः चार मठ हैं आदि। यह सब कथन अन्धविश्वासमूलक एवं युक्तिशून्य है। यदि चार की संख्या में दुराग्रह करेंगे तो दश नामों का लोप हो जायेगा? वेदान्त सिद्धान्त सम्मत षट् प्रमाणों का, ज्ञान की सप्त भूमिकाओं का, भक्ति की एकादश भूमिकाओं का पञ्चद्रविड़ एवं पञ्चगौड़ का क्या स्थान होगा? अतः मठाम्नायोपनिषत् एवं मठाम्नायसेतु में वर्णित सात आम्नायमठ शास्त्र एवं युक्तिसम्मत है। इन्हीं सब कारणों से विश्ववन्द्य अनन्तश्रीविभूषित यतिचक्रचूड़ामणि धर्मसम्राट् पूज्यपाद स्वामी करपात्री जी महाराज का कथन 'सुमेरु पीठ शास्त्रीय है, मठाम्नायोपनिषद् द्वारा अनुमोदित है (सन्मार्ग २० अगस्त, १९८०) सर्वथा शास्त्र एवं युक्तिसम्मत है।

सारांश यह कि, काशीस्थ ऊर्ध्वाम्नाय सुमेरुमठ का आचार्य शास्त्रीय प्रधानपीठस्थ होने के कारण सर्वथा हम लोगों को मान्य है। जनता को चाहिए कि उक्त मठ की उन्नति एवं धर्मप्रचार में वर्तमान में काशीस्थ उक्त पीठ पर अभिषिक्त विद्वन्मूर्धन्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्री नरेन्द्रानन्द सरस्वती जी महाराज को सहयोग देवें जिससे वर्तमान की कठिन परिस्थिति में सनातनधर्म के रक्षण में उन्हें बल मिले।

□□

मठाध्यक्षों को उपदेश

आदिशङ्कर ने केवल मठों की स्थापना करके ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर दी, बल्कि इन मठाध्यक्षों के लिए ऐसी व्यावहारिक सुव्यवस्था भी बाँध दी थी, जिसके अनुसार चलने से उनके महान् धार्मिक उपेदश की सर्वांशत: पूर्ति होती है। आचार्य के ये उपदेश महानुशासन के नाम से प्रसिद्ध हैं। आचार्य का यह कठोर नियम था कि मठ के अधीश्वर लोग अपने राष्ट्र (क्षेत्र) की प्रतिष्ठा के लिये तथा धर्म के प्रचार करने के लिए अपने निर्दिष्ट प्रान्तों में सदा भ्रमण किया करें। उन्हें अपने मठ में नियमित (स्थायी) रूप से निवास नहीं करना चाहिये। उन्हें अपने-अपने देशों में आचार्य प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म तथा सदाचार की रक्षा विधिपूर्वक करनी चाहिये। आलस्य करने से धर्म नष्ट हो जाने का डर सदा बना रहता है। इसलिए उत्साहित होकर धर्म की रक्षा में लगना प्रत्येक मठ के आचार्य का पवित्र कर्त्तव्य है। एक मठ के अध्यक्ष को दूसरे मठ के अध्यक्ष के विभाग में प्रवेश न करना चाहिये। सब आचार्यों को मिलकर भारतवर्ष में एक महती धार्मिक सुव्यवस्था बनाये रखनी चाहिये जिससे वैदिक धर्म अक्षुण्ण रूप से प्रगतिशील बना रहे। मठ के अधीश्वरों के लिए आचार्य का यही उपदेश है। **जो कोई भी व्यक्ति आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।** इस पद के लिए अनेक सद्‌गुणों की नितान्त आवश्यकता है। पवित्र, जितेन्द्रिय, वेद-वेदाङ्ग में विशारद, योग का ज्ञाता, सकल शास्त्रों में निष्णात पण्डित ही इन मठों की गद्दी पर बैठने का अधिकारी है। यदि मठाध्यक्ष इन सद्‌गुणों से युक्त न हो, तो विद्वानों को चाहिये कि उसका निग्रह करें, चाहे वह अपने पद पर भले ही आरूढ़ हो गया हो, अर्थात् गुणहीन व्यक्ति के मठाधीश बन जाने पर भी उसे मठ की गद्दी से उतार देना ही शङ्कराचार्य की आज्ञा है—

उक्तलक्षणसम्पन्नः स्याच्चेत् मत्पीठभाग्भवेत्।
अन्यथा रूढपीठोऽपि, निग्रहार्हो मनीषिणाम्।।

इस नियम के बनाने में आचार्य का कितना व्यवहार-ज्ञान छिपा हुआ है, पण्डितों के सामने इसे प्रकट करने की आवश्यकता नहीं। विद्वान् लोग ही धर्म के नियन्ता होते हैं, अत: आचार्य ने मठाध्यक्षों के चरित्र की देख-रेख इस देश के प्रौढ़ विद्वानों के ऊपर ही रख छोड़ी है। इस विषय में विद्वानों का बड़ा कर्त्तव्य-दायित्व है। गुणहीन संन्यासी, धर्म की कथमपि सुव्यवस्था नहीं कर सकता। इसी कारण शङ्कराचार्य ने उसे पद से च्युत करने का अधिकार विद्वानों को दे दिया है। आचार्य ने इन अध्यक्षों को धर्म के उद्देश्य से राजसी ठाट-बाट से रहने का उपदेश दिया है, परन्तु इसमें स्वार्थ की बुद्धि प्रबल न होकर उपकार बुद्धि ही मुख्य होनी

चाहिये। पीठों के अध्यक्षों को तो स्वयं पद्मपत्र की तरह जगत् के व्यापारों से निर्लिप्त रहना चाहिये। उनका जीवन ही वर्णाश्रमधर्म की प्रतिष्ठा के लिये है। उन्हें तन-मन-धन लगा कर इस कार्य के सम्पादन के लिये प्रयत्नशील बनना चाहिये। यदि वे ऐसा करने में समर्थ नहीं हैं तो उस महत्त्वपूर्ण पद के अधिकारी वे कभी भी नहीं हो सकते जिसकी स्थापना आचार्य-चरणों ने वैदिक धर्म के अभ्युदय के लिये अपने हाथ से की थी।

आचार्य के ये उपदेश कितने उदात्त, कितने उदार तथा कितने उपादेय हैं! इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि आचार्य का व्यवहारज्ञान, शास्त्रज्ञान की अपेक्षा कथमपि घटकर नहीं था। यह **महानुशासन** आर्यधर्म के लिए सचमुच महान् अनुशासन है। यदि आजकल मठाधीश्वर लोग इसके अनुसार चलने का प्रयत्न करते तो हमें पूरा विश्वास है कि विदेशी सभ्यता के सम्पर्क में आकर भारतीयों के हृदय में अपने धर्म के प्रति, अपने धर्मग्रंथों के प्रति, अपने देवी-देवताओं के प्रति और अपनी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति जो अनादर का भाव धीरे-धीरे घर करता जा रहा है, वह न जाने कब का नष्ट हो गया होता और भारतीय जनता निःश्रेयस तथा अभ्युदय की सिद्धि करने वाले वैदिक धर्म की साधना में कब से जी जान से लग गयी होती।

शङ्कराचार्य द्वारा उपदिष्ट **'महानुशासन'** इस प्रकार की उनकी धर्म-प्रतिष्ठा की भावना को समझने में नितान्त उपादेय है, परन्तु मुझे दुःख है कि इस अनुशासन का मूल संस्कृत रूप साधारणतया अधूरा ही उपलब्ध होता है। अनेक हस्तलिखित प्रतियों को मिलाकर यहाँ उसके असली मूलरूप को पूर्णतः खोज निकाला गया है, अतः पाठकों की सुविधा के लिये यह महानुशासन यहाँ दिया जाता है—

महानुशासनम्

आम्नायाः कथिता ह्येते यतीनाञ्च पृथक् पृथक्।
ते सर्वे सप्त आचार्याः नियोगेन यथाक्रमम्॥ १॥
प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीयास्ततोऽन्यथा।
कुर्वन्तु एव सततमटनं धरणीतले॥ २॥

ये यतियों के अलग-अलग आम्नाय कहे गये हैं। वे सभी सात आचार्यों को क्रमानुसार निर्देशित होने चाहिये। जिन्हें सबको अपने-अपने धर्मों में प्रयोग में लगाना चाहिए। वे सप्त आचार्य निरन्तर पृथिवी का भ्रमण करते रहें॥ १-२॥

विरुद्धाचारणप्राप्तावाचार्याणां समाज्ञया।
लोकान् संशीलयन्त्वेव स्वधर्माप्रतिरोधतः॥ ३॥

कहीं धर्मविरुद्ध आचरण प्राप्त होने पर, आचार्यों की सम्यक् आज्ञा से जो शास्त्रविरुद्ध न हो, ये आचार्य, लोगों को व्यवस्थित शीलयुक्त बनाते हैं ॥ ३ ॥

स्वस्वराष्ट्रप्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम् ।
मठे तु नियतोवास आचार्यस्य न युज्यते ।। ४ ।।

अपने-अपने अधीनस्थ राष्ट्र (क्षेत्र) में संचरण करते हुए वहाँ धर्मादेशन, धर्मानुशासन करते रहना चाहिये। स्थायी रूप से मठों में निवास आचार्यों के लिए उचित नहीं है ॥ ४ ॥

वर्णाश्रमसदाचारा अस्माभिर्ये प्रसाधिताः ।
रक्षणीयास्तु एवैते स्वे स्वे भागे यथाविधि ।। ५ ।।

हमलोगों के द्वारा बताये गये जो वर्णाश्रम सम्बन्धी सदाचार हैं उनकी ही विधिपूर्वक अपने-अपने क्षेत्रों में रक्षा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

यतो विनष्टिर्महती धर्मस्यात्र प्रजायते ।
मान्द्यं संत्याज्यमेवात्र दाक्ष्यमेव समाश्रयेत् ।। ६ ।।

धर्म की अत्यधिक हानि हो रही है, अतः आलस्य छोड़, कुशलता का आश्रय ले आचार्यों को स्वकर्म का आचरण करना चाहिए ॥ ६ ॥

परस्परविभागे तु प्रवेशो न कदाचन ।
परस्परेण कर्त्तव्या आचार्येण व्यवस्थितिः ।। ७ ।।

आचार्यों को कभी भी एक दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। किन्तु धर्मसम्बन्धी निर्णयों में परस्पर एकमत से कार्य सम्पादन करना चाहिये ॥ ७ ॥

मर्यादायाः विनाशेन लुप्यते नियमाः शुभाः ।
कलहाङ्गारसम्पत्तिरतस्तां परिवर्जयेत् ।। ८ ।।

मर्यादा के विनाश से शुभ नियमों का लोप हो जाता है तथा कलहरूपी अङ्गार की उत्पत्ति होती है, इसलिए मार्यादा का सैदव अनुपालन करना चाहिये ॥ ८ ॥

परिव्राड् चार्यमर्यादां मामकीनां यथाविधि ।
पीठाधिगां सप्तसत्तां प्रयुञ्ज्याच्च पृथक् पृथक् ।। ९ ।।

परिव्राजक रूप में अलग-अलग मेरे द्वारा निर्धारित विधि का पालन करते हुये अपने-अपने पीठों में आचार्यों के योग्य मर्यादा का पालन करना चाहिये ॥ ९ ॥

शुचिर्जितेन्द्रियोवेदवेदाङ्गादिविशारदः ।
योगज्ञः सर्वशास्त्राणां च मदास्थानमाप्नुयात् ।। १० ।।

पवित्र, जितेन्द्रिय, वेद-वेदाङ्ग का ज्ञाता, (छः अङ्गों के साथ) योग का जानकार, सभी शास्त्रों में निपुण व्यक्ति ही मेरे (शङ्कराचार्य) पद को प्राप्त कर सकता है ॥ १० ॥

उक्तलक्षणसम्पन्नः स्याच्चेन्मत्पीठभाग् भवेत् ।
अन्यथा रूढपीठोऽपि निग्रहार्हो मनीषिणाम् ।। ११ ।।

पीठाधीश्वर उक्त लक्षणों से सम्पन्न होना चाहिए यदि ऐसा न हो तो पीठारूढ़ आचार्य भी मनीषियों द्वारा निग्रहीत (अनुशासित) किया जाना चाहिए ॥ ११ ॥

न जातु मठमुच्छिन्द्यादधिकारिण्युपस्थिते ।
विघ्नानामपि बाहुल्यादेष धर्म्मः सनातनः ।। १२ ।।

विघ्नों की अधिकता होने पर भी अधिकारी के रहते मठों का उच्छेद (विनाश) नहीं होने देना चाहिए यही सनातन धर्म है ॥ १२ ॥

अस्मत्पीठसमारूढः परिव्राडुक्तलक्षणः ।
अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इति श्रुतेः ।। १३ ।।

हमारे पीठ पर आसीन परिव्राजक को जो उक्त लक्षणों से युक्त हो उसे मेरा ही स्वरूप समझना चाहिये ॥ १३ ॥

एक एवाभिषेच्यः स्यादन्ते लक्षणसम्मतः ।
तत्तत्पीठे क्रमेणैव न बहु युज्यते क्वचित् ।। १४ ।।

उपर्युक्त लक्षणों से सम्पन्न एक ही आचार्य का एक पीठ पर अभिषेक किया जाना चाहिये। कभी भी बहुतों की नियुक्ति उचित नहीं है ॥ १४ ॥

सुधन्वनः समौत्सुक्यनिवृत्यै धर्म्महेतवे ।
देवराजोपचारांश्च यथावदनुपालयेत् ।। १५ ।।

सुधन्वा की धर्मसम्बन्धी जिज्ञासा की निवृत्ति हेतु देवराज इन्द्र के उपचारों का पालन करना चाहिये ॥ १५ ॥

केवलं धर्म्ममुद्दिश्य विभवो ब्रह्मचेतसाम् ।
विहितश्चोपकाराय पद्मपत्रनयं व्रजेत् ।। १६ ।।

ब्रह्मचेतनासम्पन्नजनों को केवल धर्महेतु ही उपकार के लिए वैभव के संकलन में पद्मपत्र नीति का अनासक्त भाव से अनुपालन करना चाहिये ॥ १६ ॥

सुधन्वा हि महाराजस्तदन्ये च नरेश्वराः ।
धर्म्मपारम्परीमेतां पालयन्तु निरन्तरम् ।। १७ ।।

महाराज सुधन्वा तथा अन्य राजागण इस धर्मपरम्परा का निरन्तर पालन करें ॥ १७ ॥

चातुर्वर्ण्यं यथायोग्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै ।। १८ ।।

यथायोग्यरूप चातुर्वर्ण्यप्रजा का मन, वाणी, कर्म तथा शरीर से, विभागों के क्रम का ध्यान रखते हुए गुरु के पीठ (स्वक्षेत्रीय आचार्य पीठ) का समादर करें ॥ १८ ॥

धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः ।
कृताधिकाराः आचार्या धर्मतस्तद्वदेव हि ।। १९ ।।

आचार्यों द्वारा अधिकृत राजागण प्रजा से कर लेते हुए पृथ्वी का जिस प्रकार धर्मानुरूप पालन करते हैं, उसी प्रकार आचार्यगण भी धर्मानुकूल धर्मानुशासन करें ॥ १९ ॥

धर्मो मूलं मनुष्याणां, स चाचार्यावलम्बनः ।
तस्मादाचार्यसुमणेः, शासनं सर्वतोऽधिकम् ।। २० ।।

धर्म मनुष्यों का मूल है और वह आचार्यों पर अवलम्बित है, इसलिए आचार्यों का शासन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है ॥ २० ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शासनं सर्वसम्मतम् ।
आचार्यस्य विशेषेण ह्यौदार्यं भरभागिनः ।। २१ ।।

इसलिए सभी प्रयत्नों से सर्वसम्मत शासन होना चाहये । उदारता (राग-द्वेष के अभाव) से युक्त आचार्यों का शासन विशेष महत्त्व रखता है ॥ २१ ॥

आचार्याक्षिप्तदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।

निर्मला स्वर्गमायान्ति, सन्तः सुकृतिनो यथा ।। २२ ।।

जिस प्रकार सुन्दर कर्मों के कर्ता सन्त लोग स्वर्ग को जाते हैं, उसी प्रकार पाप करने के बाद भी मनुष्य आचार्यों के दण्ड (अनुशासन) से नियंत्रित हो, निर्मल निर्दुष्ट होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

इत्येव मनुरप्याह गौतमोऽपि विशेषतः ।

विशिष्टशिष्टाचारोऽपि, मूलादेव प्रसिद्ध्यति ।। २३ ।।

यही मनु और गौतम जैसे स्मृतिकारों ने कहा है तथा प्रारम्भ से यही विशिष्ट जनों का शिष्टाचार प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥

तानाचार्य्योपदेशाँश्च राजदण्डाँश्च पालयेत् ।

तस्मादाचार्यराजानावनवद्यौ न निन्दयेत् ।। २४ ।।

सभी को आचार्यों के उपदेशों एवं राजानुशासन का पालन करना चाहिये। इसलिए आचार्य एवं राजागण अनिन्द्य हैं, अतः इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये ॥ २४ ॥

धर्म्मस्य पद्धतिर्ह्येषा जगतः स्थितिहेतवे ।

सर्ववर्णाश्रमाणां हि यथाशास्त्रं विधीयते ।। २५ ।।

क्योंकि संसार के पालन हेतु सभी वर्णाश्रमधर्मों की यही धर्म-व्यवस्था है, शास्त्रानुसार इसका पालन करना चाहिए ॥ २५ ॥

कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायामृषिसत्तमः ।

द्वापरे व्यास एव स्यात् कलावत्र भवाम्यहम् ।। २६ ।।

।। इति महानुशासनम् ।।

सतयुग में ब्रह्मा जगद्‌गुरु थे, त्रेता में ऋषि श्रेष्ठ (वशिष्ठ) हुए, द्वापर में व्यासजी एवं कलियुग में जगद्‌गुरु रूप में मैं स्वयं (यह महानुशासन प्रस्तुत करता) हूँ ॥ २६ ॥

।। महानुशासन सम्पूर्ण ।।

□□

काशी मोक्ष निर्णय

[*टि० – यह निबन्ध पूज्यपाद शङ्कराचार्य श्री स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती के पूर्वाश्रम का है, आज महाराजश्री भी ब्रह्मलीन हो चुके हैं किन्तु काशी और संस्कृत के प्रति अनुराग दर्शनीय है अत: पाठक इसके काल संकेतों को सुधारकर समझें।*]

सम्पादक

काशीमोक्षनिर्णयः काश्याम् मरणान् मुक्तिः ।
असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयम् ।
काशी वासः सतांसंगो, गंगाभ्यः शिव पूजनम् ।।

काशी में मरने से मुक्ति होती है। असार इस संसार में चार वस्तुएँ सार हैं। १. काशीवास, २. सत्संग, ३. गंगाजलसेवन, ४. शिवपूजन सार हैं। श्री काशी जी का दूसरा नाम अविमुक्त है क्योंकि भगवान् शंकर इसे छोड़ कर कहीं नहीं जाते। अत: इसे अविमुक्त करते हैं। काशी तीन प्रकार की है–

१. भौतिक काशी– जो भूमि भारत में उत्तरप्रदेश में है। चिन्मयकाशी समस्त भूखण्ड से मिली रहने पर भी शंकर जी के त्रिशूल पर स्थित है, क्योंकि प्रलय के जल में डूबती नहीं। छत्राकार जल में तैरती रहती है। जब प्रलयकाल का जल काशी को डुबोना चाहता है, तब शिवजी त्रिशूल ऊपर उठा देते हैं। वह दूसरे अन्तरिक्ष लोक में चली जाती है। जब जल वहाँ पहुँचता है, तब त्रिशूल और ऊपर उठा देते हैं तो काशी स्वर्ग में चली जाती है। जब प्रलय की समाप्ति होती है, तो त्रिशूल को शंकरजी नीचे करते जाते हैं और वह पूर्ववत् भूखण्ड पर स्थित हो जाती है। इसका नाश न होने के कारण इसे अविनाशी कहा है। चार युगों में इसके अर्धचन्द्राकार, धनुषाकार आदि चार रूप हो जाते हैं।

२. आधिदैविक काशी– जो देवताओं को अधीन करके स्थित हो, शंकरजी का महाकैलाश, शिव लोक आधिदैविक काशी है।

३. आध्यात्मिक काशी– शरीर की अनेक नाड़ियों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना तीन नाड़ियाँ प्रधान हैं। दाहिनी नासिका से निकलने वाली नाड़ी पिंगला, बायीं से निकलने वाली इड़ा, इन्हें गंगा यमुना के नाम से कहते हैं तथा सूर्यचन्द्र नाड़ी भी कहते हैं। बीच की नाड़ी सुषुम्ना जिसको सरस्वती भी कहते हैं। इन दोनों के बीच की नाड़ी में संगम होता है। वही आध्यात्मिक काशी

है अथवा इसको वाराणसी के नाम से भी कहते हैं। क्योंकि बायीं नाड़ी जीव के समस्त पापों को दूर करती है। इसे **वरणा** कहा है तथा दाहिनी नाड़ी जीव के सब पापों को भस्म करने के कारण **नासी** है। जो साधक दोनों स्वरों को वश करके भृकुटी में स्थिर करके शरीर त्यागता है। वह पुनर्जन्म से रहित हो जाता है। उपनिषद् में कहा भी है–

जन्मान्तरकृतान् सर्वान् दोषान् वारयति तेन वरणा भवति इति।

सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् नाशयति इति नासी भवति इति, वरणां नाश्यां च मध्ये प्रतिष्ठिता इति वाराणसी।

इसे वाराणसी क्यों कहते हैं। जीव के जन्म-जन्मान्तर के सभी दोषों को दूर करती है, इसलिए वरणा तथा असी दोनों के बीच में स्थित होने के कारण इसे वाराणसी कहते हैं।

परन्तु इस घोर कलिकाल में साधक के पास इतना विवेक, वैराग्य, योग, ध्यान आदि नहीं है। इसलिए भगवान् शंकर जीवों का कल्याण करने के लिये काशीवास करते हुए मरने वाले पुरुषों के दाहिने कान तथा स्त्रियों के बायें कान में राम भक्तों को राम तारक मन्त्र, गणेश भक्तों को गणेश तारक, शक्ति के उपासकों को दुर्गा तारक मंत्र, तथा यतियों को प्रणव का उपदेश करके मुक्ति देते हैं। भगवान् शंकर के काशी में आने से पहले, काशी देवी साक्षात् तारक मन्त्र का उपदेश देकर जीवों को मुक्त करती थीं, इसका विस्तार से उल्लेख ब्रह्मवैवर्त पुराण के परिशिष्ट काशीरहस्य, स्कन्द- पुराण के काशीखण्ड, काशीकेदारमाहात्म्य, सुरेश्वराचार्य कृत-काशीमोक्षनिर्णय आदि ग्रन्थों में दिया है।

शंका– सभी सैद्धान्तिक ग्रन्थों में तो ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः, 'ज्ञानादेव कैवल्यम् प्राप्यते येन मुच्यते' इत्यादि अनेकों ग्रन्थों में बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं है, फिर काशी में मरने से कैसे मुक्ति हो सकती है?

उत्तर– बिना ज्ञान के मुक्ति कहीं नहीं हो सकती है। काशी में मरने वाले प्रत्येक जीव का कान, स्त्री का बायां कान, पुरुष का दाहिना कान ऊपर रहता है। उस जीव के शरीर त्यागने से पूर्व भगवान् शंकर त्रिशूल, डमरू आदि धारण किये हुए उसके समीप जाते हैं। अधिकारी भक्तों ने उनका दर्शन भी किया है। उनके पहुँचते ही उस जीव को दिव्य शरीर प्राप्त होता है। उसको ज्ञानोपदेश करते हुए भगवान् शंकर कहते हैं– "न मैं हूँ न तुम हो, न काशी है न गंगा

है। ब्रह्मा-विष्णु आदि देवता- असुर भी नहीं हैं।'' तब भक्त पूछता है। यह सब प्रत्यक्ष मुझे दिखाई देता है। आप कैसे कहते हो कुछ नहीं है। उत्तर में शिवजी कहते हैं– ''जगत्-स्वप्न के समान मिथ्या है।' चेतन का विवर्त है। अर्थात् ब्रह्म ही जगत् के रूप में न होने पर भी जीवों के अज्ञान से इस रूप में भासता है, किन्तु जो मनुष्य काशीवास करते हैं तथा काशीवास के नियम का पालन करते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि अन्य स्थानों में किया हुआ पाप तीर्थों में छूट जाता है। तीर्थों में किया हुआ पाप छ: मुक्तिपुरियों में अयोध्या, मथुरा, कांची, हरिद्वार, उज्जैन, द्वारका इन तीर्थों में छूट जाता है। किन्तु इन छ: पुरियों में किया हुआ पाप काशी में छूटता है। काशी में किया हुआ पाप कहीं भी किसी भी उपाय से नहीं छूटता है। अत: काशी वास करते हुए जो पाप करते हैं, उनको भैरवी यातना भोगनी पड़ती है। वह थोड़े दिनों की है, किन्तु यमयातना से भयंकर है। उस यातना को भोगने के बाद काशी में जन्म लेकर मुक्त होते हैं। काशी में आत्महत्या करने वाले की मुक्ति नहीं होती, परन्तु जो केदारखण्ड में शरीर त्यागते हैं, उन पापियों को मरने के बाद भैरवीयातना भी नहीं प्राप्त होती है। भाव यह है कि काशी में मरने वाला चाहे किसी देवता का भक्त हो, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैन, बौद्ध, आस्तिक, नास्तिक, मुक्त चाहे न चाहे काशीमहाक्षेत्र में शंकर जी ने मुक्ति का क्षेत्र खोल रखा है। जबरदस्ती यहाँ मुक्ति मिलती है। मनुष्य ही नहीं पशु, पक्षी, कीट, पतंग, मछली, कछुआ, लता, औषधि, वनस्पति सभी काशी में मरने वाले तीनों शरीरों को ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म करके मुक्ति पा जाते हैं। इसलिए काशी का दूसरा नाम महाश्मशान है। श्मशान में जीव का स्थूल शरीर नष्ट हो जाता है। परन्तु काशी में तीनों शरीर नष्ट होने के कारण इसे महाश्मशान कहते हैं।

काशीरहस्य नामक ग्रन्थ में तथा शैवागम में कहा है। काशी में मरने वाले यति के पास त्रिशूल, डमरूधारी शंकर आ जाते हैं। तब उसकी मूर्छा दूर होती है। तब उसके कान में तारक मन्त्र सुनाते हैं। मूर्छाकाल में जीव भगवान् का रूप देखता है। होश में आने पर वह रूप लुप्त हो जाता है। अत: बुद्धिमानों की बुद्धि काशीसेवन में ही है। काशीरहस्य में व्यास जी कहते हैं, अपने दोनों पैर पत्थर से तोड़ कर काशी से बाहर न जाय। काशी का त्याग करने वाला महामूर्ख है। जो काशी वास का नियम का पालन नहीं करता, उसके लिये काशी मगध के समान, शीतल गंगा अङ्गार वाहनी है। पूर्व पुण्य के बिना काशीवास नहीं होता। कई लोग काशीवास करना चाहते हैं किन्तु

ऐसा नहीं कर पाते। इच्छा होने पर भी काशी के कोतवाल कालभैरव के दूत सम्भ्रम-विभ्रम काशी छुड़ा देते हैं।

काशीरहस्य में कथा है कि एक बार ऋषि भगवान् के पास जाकर बोले- हमें गंगा जल के ऊपर छत्र के समान एक प्रकाश पुञ्ज दिखाई देता है। यह सम्पूर्ण पृथ्वी जलमग्न है। कोई बचा नहीं है। तब भगवान् विष्णु ने कहा, जब मैंने लोक रक्षणार्थ शंकरजी का स्मरण किया, तो वे प्रभु लिङ्ग- रूप धारण करके मेरे हृदय से बाहर आये तथा बढ़ते-बढ़ते पाँच कोश के हो गये। यह छत्राकार परम ज्योति जो आकाश में दिखाई देती है, पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक व्याप्त है। उसी को वेदों में काशी कहा है। चार युगों में उसका रूप बदलता है। सत्ययुग में छत्राकार, त्रेता में दण्डाकार, द्वापर में लिङ्गाकार, किसी-किसी द्वापर में शंखाकार, कलियुग में अर्धचन्द्राकार होती है। यद्यपि चर्मचक्षुओं से काशी का पत्थर का भौतिक रूप दीखता है, परन्तु दिव्यदृष्टि से अथवा अन्त:करण की अन्तर्मुखी ऋतम्भरा प्रज्ञा से देखने पर प्राचीन ऋषियों के समान आधुनिक भगवत् भक्तों तथा योगियों को श्री काशी का चिन्मय स्वरूप प्रत्यक्ष होता है। प्रलय में भौतिक-काशी पृथ्वी, पर्वतों के साथ जल में डूब जाती है तथा चिन्मय काशी योगदृष्टि से लिङ्गाकार या छत्राकार दिखाई देती है। यह उत्तर भगवान् विष्णु ने देवताओं को दिया।

अर्वाचीन सन्त श्रीरामकृष्ण परमहंसजी को काशी का दिव्य शरीर दिखाई दिया। रोलैण्ड ने उनके जीवन चरित्र में लिखा है-

He visited Banaras seemed not built on stones but a condense mass of spirituality. This has also been the experience of other yogies who have visited grand Kashi. (Life of the Ram Krishna Paramhans by Mr. Romain Roland.)

इसका अर्थ- जब स्वामी रामकृष्ण परमहंसजी ने काशी में प्रवेश किया, उन्होंने पत्थर की बनी काशी नहीं देखी, अपितु आध्यात्मिक काशी का प्रत्यक्ष किया। इसी प्रकार का अनुभव अन्य योगियों को हुआ जिन्होंने काशी में प्रवेश किया (जीवन चरित्र रामकृष्ण परमहंस)

आचार्यपाद भगवान् शंकर ने भी कहा है-

काश्यां काश्यते काशी काशी सर्व प्रकाशिका । येन विदिता काशी तेन प्राप्ता हि काशिका।।

अर्थ– शरीर को प्रकाशित करने वाली काशी है। इस आध्यात्मिक काशी (आत्मा) को जिसने जाना, उसने काशी को प्राप्त किया।

शिवपुराण में भी आता है कि भगवान् शंकर ने जब देखा कि मेरी माया से मोहित जीव मुझे नहीं प्राप्त कर सकते तब उन्होंने त्रिशूल पर टंगी हुई काशी अर्थात् भक्ति-ज्ञान-वैराग्य रूपी त्रिशूल पर टंगी हुई काशी को मृत्यु लोक में स्थापित किया। यह दिव्य काशी जीव के सञ्चित कर्मों को भस्म करती है। इसलिये इसे काशी कहते हैं। **शंका–** कभी-कभी देखा जाता है, पुण्य कर्म वाले बाहर मरते हैं, पापी काशी में, ऐसा क्यों?

समाधान– इस विषय में सूक्ष्म विचार करना चाहिए कि कौन पापी है और कौन धर्मात्मा है। जो धर्मात्मा दीखता है, इस जन्म में उसे हम धर्मात्मा कहते हैं जो पापी दीखता है उसे पापी कहते हैं। इस जन्म के पाप को देखते हैं इस जन्म में भी किसके मन में पुण्य है या पाप उसके ह्रदय की बात दूसरा नहीं जान सकता। यदि किसी ने किसी साधन से जान भी लिया तो इसी जन्म का जाना, पिछले जन्म का नहीं, क्योंकि जीव में सीमित सर्वज्ञता है, ईश्वर में सीमा रहित। वह अनन्त जन्मों के पुण्य-पापों को जानता है। अत: पापी के सञ्चित पुण्यों के अनुसार काशी में मुक्ति होती है। पिछले सञ्चित पापों को लेकर धर्मी की काशी से बाहर मृत्यु होती है। किन्तु सामान्य सिद्धान्त यही है, पुण्य कर्मी की काशी में, पापी की बाहर मृत्यु होती है। जैसे अग्नि में जलाने की शक्ति है। वैसे ही काशी में मोक्षदायिनी शक्ति है। जैसे स्वाति नक्षत्र की जितनी बूँदें सीपी में गिरती हैं, उतने ही मोती बनते हैं, वैसे काशी में रहने वाले शरीर त्याग से मुक्ति पाते हैं। पञ्चक्रोशी काशी में सुई की नोक के बराबर स्थान नहीं है, जहाँ मरने से मुक्ति न हो।

शंकर पार्वती से कहते हैं–

योगोऽत्र निद्रा कृतभः प्रचारः, स्वेच्छाशनं देवि महानिवेद्यम् ।
लीलात्मनो देवि पवित्रदानम्, जपःप्रजल्पं शयनं प्रणामः ।।

हे देवि! काशी में निद्रा, योगनिद्रा, काशी का चलना-फिरना योग की खेचरी मुद्रा है। स्वेच्छा भोजन नैवेद्य है। अपनी लीला ही पवित्र दान है, बात-चीत ही जप है। सोना-बैठना प्रणाम की तरह फलदायी है।

काशीरहस्य के काशीखण्ड में कहा है– काशी की गलियों में घूमना योग की खेचरी मुद्रा है। काशीपतिशिव के आश्रित होना जन्म-मरण से छूटना है। जिसने अपने कानों से दो अक्षरों वाला काशी मन्त्र सुना वह लौट कर के नहीं आता।

शिवः काशी शिवः काशी काशीकाशी शिवः शिवः ।
त्रिवारं यः पठेन्नित्यं काशीवासफलं लभेत् ।।

अर्थ– इस मन्त्र का नित्य तीन बार पाठ करने से कहीं भी मरे उसे काशीवास का फल मिलता है अथवा तीन दिन काशीवास करके इस मन्त्र का जप करने वाले को कहीं भी मरे, काशीवास का फल प्राप्त होता है। सभी ऊसरों में काशी महान् ऊसर है। जैसे– ऊसर में बोया बीज नहीं उगता। वैसे ही काशी में शुभा-शुभ मिश्रित कर्म रूपी बीज पुनर्जन्म रूपी फल नहीं देता। अतः मुमुक्षुओं को क्षेत्रसंन्यास लेकर काशीवास करना चाहिए।

क्षेत्रसंन्यास लेने पर काशीवास के सभी विघ्न भगवान् दूर कर देते हैं। क्षेत्रसंन्यास की विधि काशीरहस्य तथा काशीखण्ड में आयी है। हे देवि! कैलाश, केदारनाथ तथा अन्य स्थान इतने प्रिय नहीं, जितना काशी है। काशी खण्ड में मणिकर्णिका की महिमा कहते हुए शंकरजी पार्वती जी से बोलते हैं–

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यपूर्वमिदं वचः ।
मणिकर्णसमं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ।।

हे देवि! मैं चार सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ। इस पूरे ब्रह्माण्ड में मणिकर्ण के समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। काशी, केदार महात्म्य में अ. २८ में कहा है–

अनेक जन्म सुकृत परिपाक वशान्नृणाम् ।
वेदान्तश्रवणे श्रद्धा भवतीति श्रुतेर्वचः ।।३६।।
श्रवमान्मननेश्रद्धा तन्निदिध्यासने ततः ।
आत्मा द्रष्टव्यः श्रोतव्यः श्रद्धया पुनः ।।३७।।
मन्तव्यश्च निदिध्यासितव्यः इत्याह वै श्रुतिः ।
तदर्थ बोधकः शम्भुरेव नान्यो हि वै गुरुः ।।३८।।

अर्थ– अनेक जन्मों के पुण्य के परिपाक से बेदान्त श्रवण में श्रद्धा होती है। यह श्रुतिवचन है। सुनने से मनन में तथा मनन से निदिध्यासन में श्रद्धा होती है। अरे! आत्मदर्शन करना चाहिए, कैसे दर्शन करे, किसी के पूछने पर गुरु उत्तर देते हैं।

श्रद्धा से सुनना, विचार करना तथा निदिध्यासन करना चाहिए। लक्ष्यार्थ का यथार्थ ज्ञान कराने वाले शंकर को छोड़ कर दूसरे कोई गुरु नहीं हैं।

प्रश्न :– श्रवण, मनन, निदिध्यासन क्या है?

उत्तर :– श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरोः सकाशात् श्रुतिविज्ञानं श्रवणं, मननम्:-साधक-बाधक-प्रमाणयन्, स्वरूपयुक्तिभिः तदर्थ चिन्तनम् मननम्।

निदिध्यासनम् '-श्रुतार्थस्य, नैरन्तर्येण अनुसंधानम् निदिध्यासनम्'।

अर्थः– श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं से, श्रुति के विज्ञान को छः युक्तियों द्वारा सुनना श्रवण है। श्रवण के बाद स्वरूप ज्ञान कराने वाली, साधक बाधक युक्तियों द्वारा, साधक का अर्थ है सिद्धान्त के पुष्टि करने वाले वचनों पर विचार करते हुए श्रुति विज्ञान का चिन्तन, मनन है। निदिध्यासनः-श्रवण किये हुए परम तत्त्व की निरन्तर खोज करना निदिध्यासन है, अथवा विषयाकार विजातीय वृत्ति को हटा कर सजातीय ब्रह्माकार वृत्ति का अभ्यास निदिध्यासन है। इन तीनों के एकमात्र गुरु भगवान् शंकर के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है। काशी में मरने वाला भगवत् भक्त मुक्त हो जाता है, किन्तु पापी भैरवी यातना भोगता है। तब मुक्त होता है।

इस भैरवी यातना से मुक्त करने के लिए सूर्यवंशी राजा मान्धाता ने प्रतिदिन अयोध्या से हिमालय जाकर अनेकों वर्षों तक शंकर की आराधना की। वे बिना दर्शन किये अन्नजल नहीं लेते थे, परन्तु जब वृद्ध हो गये, तब शिवजी को काशी में ले जाने के लिए घोर तप किया। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने कहा, वर मांगो। उन्होंने शिवजी से काशी जाने की प्रार्थना की। शिव ने कहा, मैं तुम्हारी इच्छा से एक कला से यहाँ रहूँगा। १५ कलाओं से काशीवास करूँगा जिससे बाल, वृद्ध, रोगी, निर्धन सबका कल्याण होगा तथा काशी केदारखण्ड में मरने वाले महापापियों को बिना भैरवी यातना के मुक्त करूँगा। तब से केदारखण्ड में मरने वाले दुष्टों को भगवान् बिना भैरवी यातना के मुक्त करते हैं। जैसे कोई व्यभिचारी पुरुष या स्त्री को रोग हो जाता है, उपचार के लिये चिकित्सक के पास जाते हैं, चिकित्सक उनको डाँटता नहीं, किन्तु हर प्रकार से सहानुभूति देता है। वैसे ही जन्म मरणरूपी महारोग के महाचिकित्सक शिवजी केदारखण्ड में मरने वालों को मुक्त करते हैं। अतः काशीवास करना चाहिए।

काशीवास करने वाले को भावना करनी चाहिए कि भगवान् शिव, पिता तथा उमा माता हैं। गंगा जी मौसी हैं। ढुण्ढिराज गणेश जी युवराज हैं जो काशी में मरने वालों को ढूँढकर मुक्त

करने के लिए शिवजी के पास लाते हैं। यहाँ के कोतवाल भैरव मेरे बड़े भाई हैं। मणिकर्णिका काशी की बहन है। बुद्धि मेरी पत्नी है। सत्कर्म रूपी पुत्र एवं पुत्री हैं। काशी के वासी मेरे परिवार हैं। ऐसी भावना करने वाला अवश्य मुक्त होता है। काशी क्षेत्रसन्यास की विधि नीचे दी जाती है। काशी रहस्य के टीकाकार श्री स्वामी नीलकण्ठ सरस्वती जी महाराज लिखते हैं–

क्षेत्र संन्यास विधि

माघ शुक्ल चतुर्दशी को व्रत करके दूसरे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराके दक्षिणा दें, फिर मौन होकर ज्ञानवापी में स्नान करे। सफेद वस्त्र धारण कर ढुण्ढिराज गणेश जी को प्रणाम करे। सफेद वस्त्र तीन आश्रमियों के लिये हैं। संन्यासी काषाय वस्त्र पहनें फिर दण्डपाणि भैरव जी को प्रणाम करके, विश्वनाथ जी का दर्शन करें फिर मुक्ति मण्डप में आकर संकल्प करें। तीन प्राणायाम करके पंचाक्षरी मन्त्र का जप करें। बाद में मैं क्षेत्र सन्यास लूँगा। ऐसा चिन्तन करें। हे अम्बिकापते, पंच कोश से बाहर नहीं जाऊँगा। इन मन्त्रों को उच्च स्वर से दो या तीन या पाँच बार पढ़ें, फिर शिवजी, भैरव को प्रणाम करके, घर आ जायें। काल भैरव को साक्षी करे। फिर भोजन करे। पहले संचित सम्पत्ति का दान कर दे। हे देवि! इस प्रकार माघ या चैत्र में संन्यास लेने वाला निश्चय ही सब दोषों से छूट जाता है। अन्य स्थानों में करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो फल मिलता है वह काशी में प्रसन्न चित्त से एक ब्राह्मण को भोजन कराने से मिलता है। कलियुग में काशी के अतिरिक्त जीवों का कल्याण किसी और में नहीं है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के तीर्थों की यात्रा, दर्शन, स्नान, दान का फल काशीवास से प्राप्त होता है।

पंचकोसी यात्रा विधि

यात्री प्रातः उठ कर नित्य क्रिया से निवृत्त होकर ढुण्ढिराज गणेश, शिव, पार्वती, कालराज भैरव, सूर्य, चण्डिकादि को प्रणाम करने के बाद, शौचादि कर्म करें। शिवजी का स्मरण करते हुए पूजन सामग्री सहित ज्ञानवापी में स्नान करके उसकी परिक्रमा दण्डवत् करें फिर आदित्य-द्रौपदी-विष्णु-दण्डपाणि भैरव-काशीनाथ जगत्गुरु का पूजन करके तीन परिक्रमा करके १५ बार प्रणाम करें, पुनः इन नाम मन्त्रों से स्तुति प्रणाम करें।

विश्वेश्वर विश्वाधार विश्वरूप विष्णुप्रिय वामदेव महादेव-देवाधिदेव दिव्यरूप दीनानाथैक शरणागत वज्रपञ्जर साधिताखिलकार्य कायातीत कारण कामादि तृणदहन दानवान्त करदारिताखिल दारिद्र्यजितेन्द्रियैकगम्य, काशी स्थावर-जंगमनिर्वाणदायक त्रिदशानाम् नायक काशिका प्रिय नमस्ते नमस्ते नमस्ते।

इन नामों से तीन बार प्रणाम करें।

काशीवासी के नियम– काशीवासी प्रतिदिन भगवान् विष्णु का पादोदक धारण करें। जो ऐसा नहीं करता, उसका जीवन पर्यन्त का पुण्य नष्ट हो जाता है। शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि मेरे दर्शन के बिना जो खाता-पीता है, वह पाप खाता है तथा बिना पूजा किये हुए जो पत्र पुष्प-फलादि ग्रहण करता है, वह २१ जन्म तक वीर्यभोजी कीट होता है। काशीवासियों को नीचे लिखे १० दोषों को त्याग देना चाहिए– १. परान्नसेवन, २. निन्दा, ३. परस्त्री पर बुरी दृष्टि, ४. परधन की इच्छा, ५. बिना दिये किसी की वस्तु को ग्रहण करना तथा ६. परदोष दर्शन, ७. द्वेष करना, ८. अभक्ष्य भोजन, ९. आलस्य, १०. दीनता का त्याग। इन सभी दोषों का त्याग करें और चिन्तन शिव का करें। पालन करने योग्य नियम-आहारशुद्धि, मृदुभाषी, शान्तचित्त, सदाचार का पालन, जप, दानादि, करने वालों को काशीवास का फल प्राप्त होता है। अधिक धन का संग्रह न करें। क्षेत्र संन्यासी को विशेषरूप से इन नियमों का पालन करना चाहिए।

१० संस्कार– १. सत्संग, २. मुमुक्षुता, ३. सत्शास्त्र विचार, ४. विचार शुद्धि, ५. अनुभवजन्यानन्द, ६. विरति, ७. आहारशुद्धि, ८. भगवत्प्रीति, ९. समस्त जगत् को इष्ट देव मय देखना, १०. परमानन्द की प्राप्ति। इन नियमों का पालन करने वाले काशीवासी को जीवन मुक्ति तथा विदेह कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति होती है।

गृहं न काशी सदृशं सुखाय, पिता न विश्वेश समं क्वचिद्भवेत् ।
माता भवानी सदृशी न शर्मदा, कुटुम्बमत्रान्य जनोजनार्दन ।।९५।।

हे जनार्दन! काशी जी के समान सुखदायी कोई घर नहीं तथा विश्वनाथ के समान कोई पिता नहीं। पार्वती जी के समान कोई माता नहीं। काशी वासियों के समान कोई कुटुम्ब नहीं है।

□□

गुरु-दीक्षा रहस्य

(शङ्कराचार्य स्वामी श्रीनरेन्द्रानन्द सरस्वती जी)

दीक्ष धातु से गुरोश्च हलः-इस पाणिनीय सूत्र से अकार प्रत्यय करने पर तथा अजाघतष्टाप्- इस सूत्र से टाप् प्रत्यय होने पर 'दीक्षा' शब्द बनता है—

दीयते ज्ञान संबंधः क्षीयते च मलत्रयम् ।

दीयते क्षीयते येन सा दीक्षेति निगद्यते ।। (शैवाचार प्रदीपिका २/१५)

यह ज्ञान के संबंध को प्रदान करती है और मिथ्या ज्ञान, अधर्म, तथा विषयासक्ति-इन तीनों प्रकार के मल का नाश करती है। जिससे ज्ञान की प्राप्ति हो और त्रिविध मल का नाश हो-उसे दीक्षा कहते हैं। दीक्षा विशिष्ट ज्ञान प्रदान करती है, पाश बंधन को क्षीण करती है। मन, वचन, कर्म से जितने भी पाप संचित किये हैं, उन सभी पापों का नाश कर परम ज्ञान की प्राप्ति कराती है।

दीक्षा की आवश्यकता

दीक्षा प्रथम तो विज्ञान फल को प्रदान करती है, द्वितीय, गुरु रूपी परमात्मा से मिला देती है, और तृतीय, मुक्ति प्रदान कराती है। सनातन शास्त्रों में दीक्षा का बहुत अधिक महत्व है। शास्त्रकारों ने अपने-अपने धर्म-ग्रन्थों में दीक्षा का माहात्म्य एवं आवश्यकता का उल्लेख करते हुए कहा है—'दीक्षा ही समस्त संसार, समस्त पूजा-पाठ, अर्चन, अनुष्ठानादिक धार्मिक कृत्यों का मूल है'—

दीक्षा मूलं जगत्सर्वं दीक्षा मूलं परंतपः ।
दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम् ।।
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति, जप-पूजादिका क्रियाः ।
न भवन्ति प्रिये! तेषां शिलायां न्यस्त बीजवत् ।।
देवि! दीक्षा विहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन गुरुणां दीक्षितो भवेत् ।।
अदीक्षितोऽपि मरणे, रौरव नरकं व्रजेत् ।—(रुद्र यामल)

समस्त जप-तप-सत्कर्म का मूल दीक्षा ही है। अतः मानव जिस किसी भी आश्रम में रहता हुआ दीक्षा का आश्रय ग्रहण करके ही निवास करे। जो मनुष्य अदीक्षित रह कर जप-तप-दान-यज्ञादिक कार्य करते हैं, उनके किये हुए कर्म उसी प्रकार निष्फल हो जाते हैं जैसे पत्थर पर बोये गये बीज निष्फल होते हैं। जो व्यक्ति दीक्षा विहीन मरता है, उसे रौरव नरक की प्राप्ति होती है। अतः समस्त मनुष्यों को प्रयत्नतः दीक्षा ग्रहण करनी ही चाहिए।

'अनेक जन्म पुरुषोधैर्दीक्षित जायते नरः।'—अदीक्षितों को तो भगवन्नाम संकीर्तन, मन्त्र, और देव पूजन-अर्चन का भी अधिकार नहीं है। अतः सभी मनुष्यों को समर्थ सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को सुसंस्कृत कर लेना चाहिए। दीक्षा में प्राप्त भगवन्नाम मंत्र ग्रहण करने से मानव 'नर' से 'नारायण' बन जाता है, ऐसा नारद पंचरात्र में कहा गया है—**'मंत्र ग्रहण मात्रेण नरो नारायणो भवेत्'**। तथा **'पुनाति लीलामात्रेण पुरुषाणां सतं शतम्'**। इस प्रकार मन्त्र ग्रहण कर मनुष्य अपनी सैकड़ों पीढ़ियों का उद्धार कर लेता है।

यथा कांचनतां भाति कांस्यं रसविधानतः।
तथा दीक्षा विधानेन, द्विजत्वं जायते नृणाम्॥ (वैष्णव तन्त्र)

अर्थात् जिस प्रकार कांसे के ऊपर रस का प्रयोग करने से वह स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार दीक्षा ग्रहण करने से मनुष्य सुसंस्कृत होकर द्विजत्व को प्राप्त करता है।

दीक्षितो ब्राह्मणो याति ब्रह्मलोकं सुधामयम्।
ऐंद्रं लोकं क्षत्रियोऽपि, प्राजापत्यं विशस्तथा।
गंधर्वनगरं याति शूद्रो दीक्षाप्रसादतः।

'गुरु दीक्षा ग्रहण करने के प्रभाव से ब्राह्मण अमृतमय ब्रह्मलोक, क्षत्रिय इन्द्रलोक, वैश्य प्रजापति लोक तथा शूद्र गंधर्व लोक की प्राप्ति करता है।'

अदीक्षितानां मर्त्यानां दोषं श्रृण्वन्तु साधकः।
अन्नं विष्ठासमं ज्ञेयं, जलं मूत्रसमं तथा॥
अदीक्षित कृतं श्राद्धं, श्राद्धं चादीक्षितस्य च।
गृहीत्वा पितरस्तस्य नरके चाशु दारुणे॥

अदीक्षितों का दिया हुआ अन्न विष्ठा के समान तथा जल मूत्र के समान अपवित्र होता है। अदीक्षित पुरुष के किये हुए श्राद्ध को ग्रहण करके उनके पितर चतुर्दश इंद्रों के समय तक

घोर नरक में पड़े रहते हैं। अदीक्षित पुरुष की पूजा देवता स्वीकार नहीं करते। अत: अदीक्षित पुरुष का दर्शन हो जाने पर सचौल स्नान करना चाहिए। जो मनुष्य दीक्षा विहीन है, वह इस संसार में पाप भोगता है तथा मोहान्धकार रूपी गर्त में गिर कर नाना प्रकार के दु:ख पाता है। जिस प्रकार ईश्वर को न मानने वाले नास्तिक की इस संसार में कोई रक्षा नहीं कर सकता, उसी प्रकार दीक्षा रहित मनुष्य की भी परलोक में कोई रक्षा नहीं कर सकता—

अथ दीक्षाविहीनो हि वर्तते भुवि चापभुक् ।
मोहान्धकारे नरके गर्ते पतति दुःखितः ।
अनीश्वरस्यमर्तस्य नास्ति त्राता यथा भुवि ।। (दत्तात्रेय्यामल)

उपदेष्टा और उपदिष्ट के लिए निर्देश

रुद्रयामल—योगिनीतंत्र में कहा गया है कि पति अपनी पत्नी को दीक्षा देने का अधिकारी नहीं है तथा पिता कन्या, पुत्र को तथा भाई, भाई को दीक्षा प्रदान न करे—

न पत्नी दीक्षयेद्भर्त्ता न पिता दीक्षयेत्सुताम् ।
न पुत्र च तथा भ्राता भ्रातरं न च दीक्षयेत् ।। (रुद्रयामल)

जिस प्रकार पुरुष के लिए दीक्षा ग्रहण करना आवश्यक है, उसी प्रकार स्त्री के लिए भी दीक्षा ग्रहण करना अत्यावश्यक है किंतु वह मंत्र दीक्षा अपने पति अथवा पिता से कदापि ग्रहण न करे। इस प्रकार मंत्र दीक्षा ग्रहण से दीक्षा ग्रहण करने वाली स्त्री और दीक्षा प्रदाता पति अथवा पिता दोनों ही दोष भागी बनते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि स्त्री को अपने पति से दीक्षा ग्रहण करना चाहिए अथवा किसी इतर विद्वान अथवा सन्त व सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण करे, इसका निराकरण भविष्यपुराण में स्पष्टत: किया गया है—

'पत्युर्मन्त्र, पितुर्मन्त्र न गृह्णीयात् कदाचन्।' (भविष्यपुराण)

इस प्रकार स्त्री अपने पिता अथवा पति से कदापि मंत्र दीक्षा ग्रहण न करे। पति और पिता सर्वथा पति अथवा पिता के रूप में ही श्रद्धेय व पूज्य हैं, 'गुरु' नहीं हो सकते। अज्ञानता वश भी इस प्रकार दीक्षा ग्रहण एवं प्रदान से दोष भागी बनना पड़ता है।

शास्त्रकारों और श्रुतियों के अनुसार इसका निषेध किया गया है—

यस्मात् पत्युश्च वामाङ्गं पत्नीति श्रुतयो जगुः ।
तस्मात् पतिश्च पत्नी च गुरुमेक समाश्रयेत् ।।

अज्ञानाद्वा गुरुं याऽन्यं कुरुते दैवतं तथा।
सा नारी च्यवते धर्मान्नरकं चाधिगच्छति ।। (त्रिपुरारहस्य)

श्रुतियों ने पत्नी को पति का वामाङ्ग कहा है, अतः पति-पत्नी दोनों को एक ही गुरु का आश्रय ग्रहण कर मन्त्र दीक्षा लेनी चाहिए। जो नारी अज्ञान वश अपने पति के गुरु और आराध्य-उपास्य देवता के अतिरिक्त अन्य गुरु और देवता को अपना आराध्य-उपास्य मानती है वह धर्म पथ से च्युत हो जाती है और उसे नरक में जाना पड़ता है।

गुरु वशिष्ठ जी भगवान् राम के कुल गुरु थे। अतः श्रीरामचन्द्रजी का समस्त परिवार ब्रह्मर्षि वशिष्ठजी का शिष्य था। महान् त्यागी-तपस्वी गुरु वशिष्ठ ने सर्वथा शास्त्र और वेद की मर्यादाओं का अनुसरण करने का ही उन्हें उपदेश किया—'महाजनों येन गतः स पन्थाः।' के अनुसार मनुष्य को अपने पूर्ववर्ती ऋषि-महर्षियों एवं गुरु परंपरा के नियमों का अनुसरण करना अनिवार्य होता है। इसमें सर्वथा वेद-शास्त्र रीति का ही पालन करना श्रेष्ठ होता है।

शास्त्रानुसार स्त्री और शूद्र आचार्य (गुरु) नहीं हो सकते। स्त्री कभी भी मन्त्रोपदेश नहीं कर सकती और शूद्र, वर्णसंकर, कलंकित, पतित-आचरण वाला, विषयी भी मन्त्रोपदेष्टा गुरु नहीं हो सकते। नारद पंचरात्र और भारद्वाज संहिता में इसका निर्देश है—

न जातु मंत्रदा नारी, शूद्रो नान्तरोद्भवः।
नाऽभिशस्तो न पतितः काम कामोऽप्यकामिनः ।।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव बोधयेयुर्हिताऽहितम्।
यथार्थ माननीयाश्च नार्हत्याचार्यतां क्वचित् ।।

कौशिका संहिता के अनुसार जो हीन वर्ण वाला अज्ञानवश अथवा लोभवश अपने से श्रेष्ठ वर्ण वाले को मन्त्रोपदेश कर अपना शिष्य बनाता है, वह मृत्यु के उपरांत क्रमशः शूकर, गर्दभ आदि पाप योनियों को भोग करता हुआ चाण्डाल योनि को प्राप्त करता है तथा यमराज के दूतों द्वारा प्रताड़ित होता हुआ शूकर मुख नामक नरक में जाता है। तांत्रिक मन्त्रों में और तान्त्रिक मंत्र की दीक्षा ग्रहण में साध्वी स्त्रियों और श्रेष्ठ बुद्धि वाले शूद्र आदि का भी अधिकार है—

तान्त्रिकेषु च मंत्रेषु दीक्षायां योषितामपि।
साध्वीनामधिकारोऽस्ति शूद्रादीनां च सद्धिमाम् ।। (हरिभक्ति विलास)

इसके साथ ही शास्त्रकारों के निषेध वचनों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है—

प्रणवाद्यं न दातव्यं मंत्रम् शूद्राय सर्वथा।
आत्ममंत्रम् गुरोर्मन्त्रम् मन्त्रश्चा जपपूर्वकम्।।
स्वाहा प्रणव संयुक्तं, शूद्रे मंत्रम् दददि्द्वजः।
शूद्रो निरयमाप्नोति ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्।। (तन्त्रसार)

शूद्र को प्रणव (ॐ कार) और प्रणवघटित मन्त्र कदापि नहीं देना चाहिए। जो ब्राह्मण शूद्र को आत्ममन्त्र, गुरुमन्त्र, बिना जप किया हुआ मन्त्र, स्वाहा और प्रणव युक्त मंत्र देता है, वह उपदेष्टा अधोगति को प्राप्त होता है और मन्त्र जप करने वाला शूद्र नरकगामी होता है।

स्त्री-शूद्राणामयं मन्त्रो नमोऽन्तस्य सुखावहः।
एतज्ज्ञात्वा महेशानि! चाण्डालानपि दीक्षयेत्।। (कुलार्णव तंत्र)

अर्थात् स्त्री और शूद्रों के लिए 'नमः' अंत वाला मन्त्र सुखदायक माना गया है। इन नियमों को जान-समझ कर चाण्डालों को भी दीक्षा दी जा सकती है।

दीक्षा की परम्परा प्राचीनकाल से प्रचलित है। अतएव ऋषि-मुनि, मनीषी, महर्षि, संत-महंत, पंडित, राजा, रंक, तक तथा दीन-हीन, से धनी-कुबेर तक दीक्षा ग्रहण करते रहे हैं। दीक्षा की प्रथा सनातन हिन्दू धर्म में ही नहीं, अपितु संसार की समस्त जाति और संप्रदाय वाले भी अपने गुरु से दीक्षा ग्रहण करते हैं। भले ही उसका रूप व प्रकार अलग हो। जाति तथा धर्म भेद से समस्त सम्प्रदायों में गुरुदीक्षा की परम्परा वर्तमान है।

शास्त्रीय नियमानुसार किसी समर्थ-योग्य गुरु से ही गुरु-मंत्र दीक्षा ग्रहण करना चाहिए। कहा है—'वृथा मंत्रोः गुरुर्बिना' अर्थात् बिना गुरु के मन्त्र निष्फल और बेकार होते हैं। पुस्तकों में लिखे मंत्र पढ़ कर उसके जप का कोई फल नहीं मिलता। अतः मंत्र-दीक्षा गुरु से ही ग्रहण करनी चाहिए। इससे मंत्र के साथ साथ गुरु की तपःशक्ति व ऊर्जा भी शिष्य को स्वतः प्राप्त होती है।

कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में गुरु मंत्र अथवा गुरु के त्याग के विषय में भी शास्त्रकारों ने निर्देश किया है—

मन्त्रत्यागाद्भवेन्मृत्युः गुरु त्यागाद्दरिद्रता।
गुरुमंत्र परित्यागात् रौरव नरकं व्रजेत्।। (तन्त्रसार)

योग्यमाद्यं गुरुं त्यक्त्वा, शिष्यः क्षुद्र क्रियाविदम् ।

गुरुं समाश्रयेदन्यं यः प्रयाति स दुर्गतिम् ।। (सूद्रसंहिता)

अर्थात्—गुरु के द्वारा गृहीत मंत्र के परित्याग से मृत्यु और गुरु के त्याग से शिष्य को दरिद्रता प्राप्त होती है। गुरु तथा गुरुमंत्र दोनों के त्याग से शिष्य रौरव नरकगामी होता है। जो शिष्य अपने प्रथम योग्य गुरु को त्याग कर क्षुद्र चमत्कारिक क्रियाविद् अन्य गुरु का आश्रय ग्रहण करता है, वह दुर्गति को प्राप्त होता है।

गृहीत मंत्रस्त्यक्तो गुरुश्चेदोष संयुतः ।

महापातक युक्तो वा पुनश्च देवनिंदकः ।। (तन्त्रान्तरे)

मन्त्रदीक्षा ग्रहण कर लेने के बाद यदि गुरु दोषों और महापातकों से युक्त हो, तथा देवताओं का निंदक हो, तो उसे त्याग देने में कोई क्षति नहीं अर्थात् त्याग देना चाहिए।

दीक्षा गृहीता शिष्य के लिए आचरण संबंधी कुछ विधान शास्त्रोक्त हैं जिनका पालन करना शिष्य के लिए अनिवार्य होता है—

क्षमा, सत्यं, दया, दानं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

देवपूजाऽग्निहवनं, सन्तोषं स्तेयवर्जनम् ।।

सर्व व्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्थितः ।। (भविष्य पुराण)

अर्थात् दीक्षित शिष्य को क्षमा, सत्य संभाषण, दया, दान, पवित्रता, जितेन्द्रियता (इंद्रियों पर नियंत्रण), देवपूजन, अग्नि परिचर्या, सन्तोष और चोरी न करना आदि इन दश धर्मों का अनिवार्यतः पालन करना चाहिए। अन्यथा अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं हो सकती।

❑❑

संकष्टमोचनस्तोत्र

(ब्रह्मलीन श्री काशी सुमेरु पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दसरस्वतीविरचित)

सिन्दूरपूररुचिरो बलवीर्यसिन्धुर्बुद्धिप्रवाहनिधिरद्भुतवैभवश्रीः ।

दीनार्तिदावदहनो वरदो वरेण्यः संकष्टमोचनविभुस्तनुतां शुभं नः ।।१।।

जो सिन्दूर-स्नान से सुन्दर देहयुक्त, बल-वीर्य के सागर, बुद्धि-प्रवाह के आकर और अद्भुत ऐश्वर्य के धाम हैं, जो दीनों के दुःखों का नाश करने के लिये दारुण दावानल के समान हैं तथा जो वरदान-तत्पर, सर्वकामपूरक, संकटघटाविदारक और सर्वव्यापी हैं, वे संकटमोचन प्रभु हम लोगों के लिये मङ्गलकारी हों॥१॥

सोत्साहलङ्घितमहार्णवपौरुषश्रीर्लङ्कापुरीप्रदहनप्रथितप्रभावः ।

घोराहवप्रमथितारिचमूप्रवीरः प्रभञ्जनिर्जयति मर्कटसार्वभौमः ।।२।।

उन वानरराज-चक्रवर्ती की जय हो, जो उत्साहपूर्वक महासिन्धु को लाँघ गये, जिनकी पुरुषार्थ-लक्ष्मी देदीप्यमान है, लंकानगरी के दहन से जिनकी प्रभाव-प्रभा दिग्दिगन्तव्याप्त है और जो घोर राम-रावण युद्ध में शत्रु सेना का मथन करने में महान् वीर तथा प्रभञ्जन पवन को आनन्द देने वाले पवनकुमार हैं॥२॥

द्रोणाचलानयनवर्णितभव्यभूतिः श्रीरामलक्ष्मणसहायकचक्रवर्ती ।

काशीस्थदक्षिणविराजितसौधमल्लः श्रीमारुतिर्विजयते भगवान् महेशः ।।३।।

जो संजीवनी के लिये द्रोणगिरि को ही उठा लाये थे, जो सुन्दर भव्य विभूतिसम्पन्न, श्रीराम-लक्ष्मण के सेवक-सहायकों में चक्रवर्तिशिरोमणि और मल्लवीर काशीपुरी के दक्षिण भाग स्थित दिव्य भवन में विराजमान हैं, ऐसे महेश-रुद्रावतार भगवान् मारुति की जय हो॥३॥

नूनं स्मृतोऽपि दयते भजतां कपीन्द्रः सम्पूजितो दिशति वाञ्छितसिद्धिवृद्धिम् ।

सम्मोदकप्रिय उपैति परं प्रहर्ष रामायणश्रवणतः पठतां शरण्यः ।।४।।

वे वानरराज स्मरण मात्र से भक्तों पर दया करने वाले हैं और विधिपूर्वक सम्पूजित होने पर सभी मनोरथों की तथा सुख-समृद्धि की पूर्ति वृद्धि करने वाले हैं। वे मोदक (लड्डू) प्रिय तथा भक्तों को विशेष मुदित करने वाले हैं। रामायण श्रवण से उन्हें परम हर्ष प्राप्त होता है और वे पाठकों की पूर्णतया रक्षा करने वाले हैं॥४॥

श्रीश्रीभारतप्रवरयुद्धरथोद्धतश्रीः पार्थैककेतनकरालविशालमूर्तिः ।

उच्चैर्घनाघनघटाविकटाट्टहासः श्रीकृष्णपक्षभरणः शरणं ममास्तु ।।५।।

महाभारत-महायुद्ध में रथ पर जिनकी शोभा समुद्यत हुई है, पृथानन्दन अर्जुन के रथकेतु पर जिनकी विशाल मूर्ति विराजमान है, घनघोर मेघ-घटा के गम्भीर गर्जन के समान जिनका विकट अट्टहास है, ऐसे श्रीकृष्णपक्ष (पाण्डव-सैन्य) के पोषक (अद्भुत चन्द्र) मेरे शरणदाता हों।।५।।

जङ्घालजङ्घ उपमातिविदूरवेगो मुष्टिप्रहारपरिमूर्च्छितराक्षसेन्द्रः ।

श्रीरामकीर्तितपराक्रमणोद्धवश्रीः प्राकम्पनिर्विभुरुदञ्चतु भूतये नः ।।६।।

उन विशाल जङ्घा वाले श्रीहनुमान का वेग उपमा से रहित–अनुपम है, जिनकी मुष्टि के प्रहार से राक्षसराज रावण मूर्च्छित हो गया था, जिनके पराक्रम की अद्भुत श्री का कीर्तन स्वयं भगवान् श्रीराम करते हैं, ऐसे प्रकम्पन (मारुत) नन्दन, सर्वव्यापक श्रीहनुमान् हमें विभूति प्रदान करने के लिये तत्पर हों।।६।।

सीतार्तिदारुणपटुः प्रबलः प्रतापी श्रीराघवेन्द्रपरिरम्भवरप्रसादः ।

वर्णीश्वरः सविधिशिक्षितकालनेमिः पञ्चाननोऽपनयतां विपदोऽधिदेशम् ।।७।।

सीता के शोक-संताप के विनाश में निपुण, प्रबल प्रतापी श्रीहनुमान भगवान् श्रीराघवेन्द्र के आलिङ्गनरूप दिव्य वर-प्रसाद से सम्पन्न हैं। जो वर्णियों–ब्रह्मचारियों के शिरोमणि तथा कपट-साधु कालनेमि को विधिवत् शिक्षा देने वाले हैं, वे पञ्चमुख हनुमानजी हमारी विपत्तियों का सर्वथा अपसारण (दूर) करें।।७।।

उद्यद्भानुसहस्रसंनिभतनुः पीताम्बरालंकृतः

प्रोज्ज्वालानलदीप्यमाननयनो निष्पिष्टरक्षोगणः ।

संवर्तोद्यतवारिदोद्धतरवः प्रोच्चैर्गदाविभ्रमः

श्रीमान् मारुतनन्दनः प्रतिदिनं ध्येयो विपद्भञ्जनः ।।८।।

जिनका श्रीविग्रह उदीयमान सहस्र सूर्य के सदृश अरुण तथा पीताम्बर से सुशोभित है, जिनके नेत्र अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि के समान उद्दीप्त हैं, जो राक्षस-समूह को न:शेषतया पीस देने वाले हैं, प्रलयकालीन मेघ-गर्जना के तुल्य जिनकी घोर गर्जना है, जिनके मुद्गर (गदा) का भ्रमण अतिशय दिव्य है, ऐसे शेभा-प्रभा-संवलित मारुतनन्दन विपद्विभञ्जन श्रीहनुमानजी का प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये।।८।।

रक्षःपिशाचभयनाशनमामयाधिप्रोच्चैर्ज्वरापहरणं दमनं रिपूणाम् ।

सम्पत्तिपुत्रकरणं विजयप्रदानं संकष्टमोचनविभोः स्तवनं नराणाम् ।।९।।

संकट-मोचन प्रभु श्रीहनुमानजी का स्तवन (गुण-गान) मानवमात्र के लिये राक्षस-पिशाच (भूत-प्रेत) के भय का विनाशक, आधि-व्याधि-शोक-संताप-ज्वर-दाहादि का प्रशमन करने वाला, शत्रु-दमन, पुत्र-सम्पत्ति का दाता एवं विजय प्रदान करने वाला है॥९॥

दारिद्र्यदुःखदहनं विजयं विवादे कल्याणसाधनममङ्गलवारणं च ।

दाम्पत्यदीर्घसुखसर्वमनोरथाप्तिं श्रीमारुतेः स्तवशतावृतिरातनोति ।।१०।।

श्रीमारुतनन्दन की इस स्तुति का सौ बार पाठ करने से दरिद्रता और दुःखों का दहन, वाद-विवाद में विजय-प्राप्ति, समस्त कल्याण-मङ्गलों की अवाप्ति तथा अमङ्गलों की निवृत्ति, गृहस्थ-जीवन में दीर्घकालपर्यन्त सुख-प्राप्ति तथा सभी मनोरथों की पूर्ति होती है॥१०॥

स्तोत्रं य एतदनुवासरमस्तकामः श्रीमारुतिं समनुचिन्त्य पठेत् सुधीरः ।

तस्मै प्रसादसुमुखो वरवानरेन्द्रः साक्षात्कृतो भवति शाश्वतिकः सहायः ।।११।।

जो कोई विवेकशील धीर मानव निष्काम भाव से श्रीमारुतनन्दन का विधिपूर्वक चिन्तन करते हुए इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसके समक्ष प्रसादसुमुख–परमसौम्य वानरेन्द्र श्रीहनुमानजी साक्षात् प्रकट होते हैं और नित्य उसकी रक्षा-सहायता करते हैं॥११॥

संकष्टमोचनस्तोत्रं शंकराचार्यभिक्षुणा ।

महेश्वरेण रचितं मारुतेश्चरणेऽर्पितम् ।।१२।।

भिक्षु (संन्यासी) शंकराचार्य श्रीमहेश्वर (श्रीमहेश्वरानन्दसरस्वती जी महाराज) ने इस 'संकष्टमोचनस्तोत्र' की रचना की है और वे इसे श्रीमारुति के चरणों में समर्पित कर रहे हैं॥१२॥

□□

अध्यात्मपथ का उत्तम साधन–योग

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी सुमेरु पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य

स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भारतीय अध्यात्मपरम्परा एवं संस्कृत वाङ्मय के आस्तिक दर्शनों में योग का स्थान अप्रतिमरूप से स्वीकार किया गया है। मनुष्य-शरीर का परम प्रयोजन सकल दुःखनिवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति है। केनोपनिषद् में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि **'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः'** अर्थात् इस मानव शरीर में यदि परमतत्त्व का बोध हो गया तो मानव-शरीर सार्थक हो गया अन्यथा मानों महान् विनाश या सर्वनाश हो गया। ऐसा होने पर चौरासी लक्ष योनियों के चक्र में पुनः जाना पड़ेगा।

परमतत्त्वबोध के लिये योग उत्तम साधन है। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवतमहापुराण के एकादश स्कन्ध में कहते हैं–

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ।।

अर्थात् मानव के परम कल्याण (मुक्ति) के लिये मैंने ज्ञान और कर्म एवं भक्ति नामक तीन योगों का कथन किया है।

कठोपनिषद् में भी योग की परमोपादेयता का वर्णन इस प्रकार मिलता है– **'अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति'** (१।२।१२)। **'आत्मनि चित्तस्य समाधानमध्यात्मयोगः, तस्य लाभेन धीरो योगी हर्षशोकौ जहाति'**– भाव यह कि समाहित-चित्त धीर पुरुष योग के द्वारा स्वयं प्रकाश आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर हर्ष-शोकरूप प्रपञ्च का त्याग करता है–मुक्त हो जाता है। इस प्रकार अध्यात्मपथ में योग के बिना प्रवेश परम दुर्लभ है।

योगस्वरूप विवेचन

मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग एवं राजयोग– भेद से योग के विविध भेद हैं। मन्त्रयोग से महाभावसमाधि, हठयोग से महाबोध समाधि, लययोग से महालयरूपी समाधि का उदय होता है। ये तीनों राजयोग के साधन हैं। पातञ्जलयोगदर्शन में वर्णित योग राजयोग है।

योग का अर्थ

योजन, योग, समाधि आदि शब्द योग के पर्याय हैं। वसिष्ठजी ने योगवासिष्ठ में चित्तवृत्तिनिरोधक योग का स्वरूप बतलाया है–

द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव।
योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्।।

'हे राघव! चित्त-नाश के केवल दो मार्ग हैं– योग और ज्ञान। चित्त-वृत्ति के निरोध को योग और आत्मतत्त्व के सम्यक् अवेक्षण को ज्ञान कहते हैं। भगवान् पतञ्जलि ने योग का लक्षण करते हुए कहा है– **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'**

चित्त की क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध नामक पाँच अवस्थाएँ होती हैं। अन्तिम दो– एकाग्र और निरुद्ध अवस्थाएँ योग की हैं।

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'– इस सूत्र की व्याख्या करते हुए नागोजी भट्ट लिखते हैं– **'चित्तस्यान्तःकरणस्य वक्ष्यमाणा या वृत्तयस्तासां निरोधो निवर्तनं योग इत्यर्थः। वृत्तिनिवर्तनं च जीवनयोनिप्रयत्नवदतीन्द्रियो यत्नविशेषं चित्तनिग्रहरूपो वृत्तिविलयहेतुः। चित्तवृत्तिसंस्कारशेषावस्था वा.....न तु वृत्त्यभाव एव, वक्ष्यमाणसंस्कारजनकत्वानुपपत्तेः।**

अर्थात् अन्तःकरण की वृत्तियों का लय योग है और वह सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात-भेद से दो प्रकार का है। **'सम्यग्ज्ञायते साक्षात्क्रियते ध्येयतत्त्वमस्मिन्निति सम्प्रज्ञातः।'** ध्येयतत्त्व का समीचीनतया साक्षात्कार जिस समाधि में हो, वह सम्प्रज्ञात है। सम्प्रज्ञात समाधि सबीज समाधि तथा सविकल्प समाधि आदि नामों से भी व्यवहृत होती है। दूसरे शब्दों में ध्येय-साक्षात्काराख्य-फलोपहितचित्तवृत्ति-निरोधरूप चित्त की अवस्था-विशेष का नाम सम्प्रज्ञात योग है।

चित्त की पाँच अवस्थाओं में से एकाग्रावस्था में सम्प्रज्ञात योग होता है। योगदर्शन के सिद्धान्तानुसार चित्त स्वतः सर्वार्थग्रहणक्षम एवं विभु होता है। तथापि तमोगुण से आवृत होने से सदा समस्त वस्तुओं के साक्षात्कार में समर्थ नहीं होता। एकाग्रावस्था में तमोरज के क्षीण होने के कारण सत्त्वमात्र के उद्रेक से चित्त वस्तु-साक्षात्कार करने में समर्थ हो जाता है– योगसार में विज्ञानभिक्षु लिखते हैं– **'चित्तं हि स्वत एव सर्वार्थग्रहणक्षमं विभु च भवति।'**

असम्प्रज्ञात समाधि, निर्बीज समाधि तथा निर्विकल्प समाधि ये समानार्थक शब्द हैं। चित्त की निरुद्धावस्था में समस्त वृत्तियों के निरोध हो जाने पर, संस्कारमात्र शेष रहने पर चित्त की पञ्चमावस्था में असम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति आती है–इसी बात को भगवान् पतञ्जलि कहते हैं–
'विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः।'

तात्पर्य यह कि परवैराग्यपूर्वक जब समस्त वृत्तियों के निरोध हो जाने पर चित्त संस्कारमात्र अवशिष्ट रहता है तो इस अवस्था को असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

अध्यात्मपथानुयायियों को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि योग से श्रेष्ठ परमात्मप्राप्तिपूर्वक जीवन्मुक्ति में सहायक प्रायः अन्य कोई विशिष्ट साधन नहीं है। अध्यात्मविद्या में योग शरीर है, भक्ति प्राण है और ज्ञान आत्मा है। शरीर में ही प्राण एवं आत्मा की अभिव्यक्ति या उपलब्धि होती है। चित्तादि का मल योग-साधन के बिना कथमपि निवृत्त नहीं हो सकता और जब तक मलादि निवृत्ति नहीं होगी, तब तक भक्ति आदि की उपलब्धि सर्वथा असम्भव है। अतः कल्याण प्रेमी जनों को किसी वास्तविक योगी गुरु का सान्निध्य-लाभ कर साधनतत्पर होना चाहिए।

□□

पञ्चदेवोपासना

भारत में पञ्चदेवों की उपासना कितनी अधिक व्यापक है, इसका विचार किया जाय तो मालूम हो सकता है कि इनकी सामूहिक साधना करने वाले, पृथक्-पृथक् उपासना करने वाले अथवा इनमें किसी एक ही की पूजा करने वाले अनेक साधक हैं और वे अपनी पूजा-पद्धति के अनुसार अर्चन करते हैं। उनके विषय में 'तन्त्रसार' में लिखा है–

शैवानि गाणपत्यानि शाक्तानि वैष्णवानि च ।
साधनानि च सौराणि चान्यानि यानि कानि च ।।

(जिस प्रकार ब्रह्म के उपासक 'ब्राह्म' होते हैं) उसी प्रकार विष्णु के उपासक 'वैष्णव', शिव के उपासक 'शैव', गणपति के उपासक 'गाणपत्य', सूर्य के उपासक 'सौर' और शक्ति के उपासक 'शाक्त होते हैं। इनमें शैव, वैष्णव, और शाक्त विशेष विख्यात हैं। भारत में इन सम्प्रदायों के सर्वत्र मन्दिर हैं। उनमें कई मन्दिर बड़े ही भव्य, विशाल, विश्वमोहक, सुदर्शनीय या साधारण भी हैं और उनमें सिद्धि-साधना या दर्शनार्थ अगणित नर-नारी प्रतिदिन जाते हैं। उनके सिवा सैकड़ों साधक अपने मकान में या बटुए में भी भगवान् की मूर्ति रखते और यथोचित विधि से पूजते हैं।

उपर्युक्त पाँचों सम्प्रदायों के सुविशाल या साधारण मन्दिरों में जगदीश, द्वारकाधीश, बुद्धगया, लक्ष्मणबाला और गोविन्ददेवादि 'विष्णु' के; रामेश्वर, महाकालेश्वर, विश्वनाथ, सोमनाथ और पशुपतिनाथादि 'शिव' के; चतुर्थीविनायक, साक्षी विनायक, गढ़गणेश, गणपति और गणराजादि 'गणेश' के; त्रिभुवनदाप, अरुणादित्य, सूर्यनारायण, लोकमणि और द्वादशादित्यादि 'सूर्य' के; तथा ज्वालाजी, कालीजी, अन्नपूर्णा, कामाख्या, मीनाक्षी और विन्ध्यवासिनी आदि 'शक्ति' के कई एक मन्दिर (मूर्तियाँ या विग्रह) विशेष विख्यात हैं। और उनके दर्शनार्थ भारत के प्रत्येक प्रान्त से अगणित यात्री जाते हैं। स्मरण रहे कि जिस प्रकार ये मन्दिर अद्वितीय हैं उसी प्रकार इनके साधन-समारोह, पूजा-विधान या भोगरागादि के आयोजन भी अद्वितीय हैं। इन मन्दिरों में या सद्गृहस्थों के घरों में आमलक-सम शालग्रामजी जैसे छोटे और भूधराकार हनुमान्जी जैसे बड़े अगणित देव प्रतिदिन पूजे जाते हैं। उनमें चाहे भैरव, भवानी, शीतला आदि हों; चाहे शिव, गणेश, सूर्यादि हों और चाहे गोविन्द, मुकुन्द, लक्ष्मीनारायणादि हों; सब उसी ब्रह्म की सत्ता हैं और पञ्चदेव के ही रूपान्तर या नामान्तर हैं। अतः साधकों को चाहिए कि आगे

दी हुई पूजाविधि के अनुसार पञ्चदेव की सामुदायिक या पृथक्-पृथक् अथवा जो इष्ट हों, उनकी पूजा करें और उनके अनन्य भक्त हो जायँ।

पराङ्ग

(१) पञ्चदेवस्थापन–

यदा तु मध्ये गोविन्दमैशान्यां शङ्करं यजेत्।
आग्नेय्यां गणनाथं च नैर्ऋत्यां तपनं तथा॥१॥
वायव्यामम्बिकाञ्चैव यजेन्नित्यं समादृतः।
यदा तु शङ्करं मध्ये ऐशान्यां श्रीपतिं यजेत्॥२॥
आग्नेय्यां च तथा हंसं नैर्ऋत्यां पार्वतीसुतम्।
वायव्यां च सदा पूज्या भवानी भक्तवत्सला॥३॥
हेरम्बं तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत्।
आग्नेय्यां पञ्चवक्त्रं तु नैर्ऋत्यां द्युमणिं यजेत्॥४॥
वायव्यामम्बिकाञ्चैव यजेन्नित्यमतन्द्रितः।
सहस्रांशुं यदा मध्ये ऐशान्यां पार्वतीपतिम्॥५॥
आग्नेय्यामेकदन्तं च नैर्ऋत्यामच्युतं तथा।
वायव्यां पूजयेद्देवीं भोगमोक्षैकभूमिकाम्॥६॥
भवानीं तु यदा मध्ये ऐशान्यां माधवं यजेत्।
आग्नेय्यां पार्वतीनाथं नैर्ऋत्यां गणनायकम्॥
प्रद्योतनं तु वायव्यामाचार्यस्तु प्रपूजयेत्॥

(२) पञ्चदेवध्यान–

(१)

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

विष्णो रराटमसि विष्णोः स्नपत्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा॥ (यजु० ५।२१)

(२)

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृतिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ।।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ॥२॥ (यजु० १६।१)

(३)

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरवरतिलकं रत्नसिंहासनस्थम् ।
दोर्भिः पाशाङ्कुशाब्जाभयधरमनिशं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं
ध्यायेच्छान्त्यर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ।।

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ (यजु० १६।२५)

(४)

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ।।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ २॥ अजस्रम्। तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान् सम्पश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ (यजु० १७।५८)

(५)

श्यामाङ्गीं शशिशेखरां निजकरैर्दानं च रक्तोत्पलं
रत्नाढ्यं कलशं परं भयहरं संविभ्रतीं शाश्वतीम् ।
मुक्ताहारलसत्पयोधरनतां नेत्रत्रयोल्लासिनीं
ध्यायेत्तां सुरपूजितां हरवधूं रक्तारविन्दस्थिताम् ।।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय। पशूना रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा॥ (यजु० ३९।४)

(३) पञ्चदेव-आवाहन–

(१) आवाहयेत्तं गरुड़ोपरि स्थितं

रमार्द्धदेहं सुरराजवन्दितम् ।

कंसान्तकं चक्रगदाब्जहस्तं

भजामि देवं वसुदेवसूनुम् ।।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाँ सुरे स्वाहा।। (यजु० ५।१२)

(२) एह्येहि गौरीश पिनाकपाणे

शशाङ्कमौले वृषभाधिरूढ़ ।

देवाधिदेपश महेश नित्यं

गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ।।

ॐ नम: शम्भवाय च मयोमवाय च नम: शङ्कराय च मयस्कराय च नम: शिवाय च शिवतराय च।। (यजु० १६।४१)

(३) आवाहयेत्तं गणराजदेवं

रक्तोत्पलाभासमशेषवन्द्यम् ।

विघ्नान्तकं विघ्नहरं गणेशं

भजामि रौद्रं सहितं च सिद्धया ।।

ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां स्वा प्रियपतिम् हवामहे निधीनां त्वा निधिपति ँ हवामहे व्वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ।। (यजु० २३।१९)

(४) आवाहयेत्तं द्युमणिं ग्रहेशं

सप्ताश्ववाहं द्विभुजं दिनेशम् ।

सिन्दूरवर्णप्रतिभावभासं

भजामि सूर्यं कुलवृद्धिहेतो: ।।

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मत्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।। (यजु० २३।४३)

(५) या श्री: स्वयं सुकृतिनां भुवनेष्वलक्ष्मी:

पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धि: ।

श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ।।

ॐ अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मानयति कश्चन। स सस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्।।

पूजा-प्रयोग

ॐ तत्सदद्य मासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः) अहं यथामिलितोपचारद्रव्यैर्विष्णु (शिव-गणपति-सूर्य-शक्ति) पूजनं करिष्ये-इति सङ्कल्प्य; तत्रादौ कलशे-वरुणाय नमः, वरुणमावाहयामि, सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि-इति गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य; एवं घण्टास्थगरुडाय नमः इति घण्टाम्, सर्वदेवेभ्यो नमः इति च शङ्खं पूर्ववत् सम्पूज्यान्यपात्रेषु च गन्धादि क्षिपेत्। अत्रैव कार्यविसेषे-अन्यदेवार्चने वा-गणानां त्वा इति० 'गणनायकम्', इदं विष्णुरिति 'विष्णुम्', नमः शम्भवायेति 'शिवम्', आ कृष्णेनेति 'सूर्यम्', अम्बे अम्बिके० इति 'शक्तिम्' च पञ्चोपचारैः पूजयेत्।

(४) ततोऽङ्गन्यासं कुर्यात्-

ॐ तत्सदद्येत्यादि० अमुकशर्माहं पञ्चदेवपूजार्थे (तन्मध्ये अमुकेष्टदेवपूजार्थे अन्यदेवार्चने वा) अङ्गन्यासं करिष्ये। ॐ सहस्रशीर्षा० इति वामकरे। ॐ पुरुष **एवेदद्०** इति दक्षिणकरे। ॐ एतावानस्य० इति वामपादे। त्रिपादूर्ध्व० इति दक्षिणपादे। ततो विराडजायत० इति वामजानुनि। तस्माद्यज्ञात्० इति दक्षिणजानुनि। तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः० इति वामकट्याम्। तस्मादश्वा० इति दक्षिणकुक्षौ। नाभ्भअया० इति कण्ठे। यत्पुरुषेण० इति वक्त्रे। सप्तास्यासन्० इत्यक्ष्णोः। यज्ञेन यज्ञः इति मूर्ध्नि। ततः पूजां समारभेत्।

(५) देवोत्थापनम्-

'भद्रं कर्णेभिः०' इतिघण्टानादं कुर्यात्-

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज ।।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यमङ्गलं कुरु ।।

इति तालत्रयं दत्त्वा देवमुत्थाप्य समीपस्थशालग्रामं ताम्रपात्रे तुलसीपत्रोपरि संस्थाप्य (दन्तधावनगण्डूषानन्तरमात्मनोऽङ्गन्यासमिव 'सहस्रशीर्षा०' इत्यादिभिर्देवस्यापि न्यासं कुर्यात्। यथा देहे तथा देवे। देवो भूत्वा देवं यजेत्। तत आवाहनादि पूजनम्। यथा-

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि ँ् सर्वतः स्पृत्वात्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।

(यजु० ३१/१)

महाविष्णवे (शिवाय गणाधिपाय सूर्याय शक्तयै वा)

(आवाहनम्)

ॐ पुरुष एवेद ँ् सर्व यद्भुतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।२।।

(आसनम्)

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।।३।।

(पाद्यम्)

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।।४।।

(अर्घ्यम्)

ॐ ततो व्विराडजायत व्विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ।।५।।

(आचमनीयम्)

ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ।।६।।

(स्नानम्)

(अत्रावासरे शङ्खपूरितोदकेनाविच्छिन्नधारया 'इदं विष्णुर्विचक्रे०' इति मन्त्रेण शालग्रामम्, 'वरुणस्योत्तम्भन'० इत्यादिना शिवादीन् स्नपयेत्। व्रतोत्सवादावत्रैव पञ्चामृतेन स्नपयेत।)

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दा ँ्सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्माद जायत ।।७।।

(वस्त्रम्)

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ।।८।।

(यज्ञोपवीतम्)

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ।।९।।

(गन्धम्)

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ।।१०।।

(पुष्पम्)

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा।। (यजु० ६।४)

(तुलसीपत्रम्)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायत ।।११।।

(धूपम्)

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।१२।।

(दीपम्)

नाभ्या आसीदन्तरिक्षँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ ।।अकल्पयन् ।।१३।।

(नैवेद्यम्)

मध्ये जलपानीयमाचमनीयञ्च समर्पयेत्–
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्वासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।।१४।।

(ताम्बूलम्)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम् ।।

(यजु० १३।४)

(दक्षिणां समर्पयामि)

ततो कर्पूरं घृतवर्तिकां वा प्रज्ज्वाल्य– 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण' (यजु० ३१।२२) इति मन्त्रेण आरार्तिकोपरि गन्धाक्षतं निक्षिप्य मण्डलं कुर्यात्। आरार्तिकां भ्रामयेत्। 'ॐ इद ँ हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीर ँ सर्वगण ँ स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त' (यजु० १९।४८)

(इति आरार्तिकम्)

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवघ्न् पुरुषं पशुम् ।।

(यजु० ३१।१५)

(प्रदक्षिणाम्)

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।

(यजु० ३१।१६)

(मन्त्रपुष्पाञ्जलीन् समर्पयामि)

'कायेन वाचेति०' क्षमायाचना। 'प्रह्लादनारदपराशरेति०', चरणामृतं पिवेत्।

पञ्चदेव-आरती

(१)

करुणापारावारं कलिमलपरिहारं
कद्रूसुतशयितारं करधृतकल्हारम् ।
घनपटलाभशरीरं कमलोद्भवपितरं
कलये विष्णुमुदारं कमलाभर्तारम् ।।

(जय देव जय देव)

(२)

भूधरजारतिलीलं मङ्गलकरशीलं
भुजगेशस्मृतिलोलं भुजगावलिमालम् ।

भूषाकृतिमतिविमलं संधृतगाङ्गजलं
भूयो नौमि कृपालुं भूतेश्वरमतुलम् ।।
(जय देव जय देव)

(३)

विघ्नारण्यहुताशं विहितानयनाशं
विपदवनीधरकुलिशं विधृताङ्कुशम् ।
विजयार्कज्वलिताशं विदलितभवपाशं
विनताःस्मो वयमनिशं विद्याविभवेशम् ।।
(जय देव जय देव)

(४)

कश्यपसूनुमुदारं कालिन्दीपितरं
कालत्रितयविहारं कामुकमन्दारम् ।
कारुण्याब्धिमपारं कालानलमुदरं
कारणतत्त्वविचारं कामय ऊष्मकरम् ।।
(जय देव जय देव)

(५)

निगमैर्नुतपदकमले निहतासुरजाले
हस्ते धृतकरवाले निर्जरजनपाले ।
नितरां कृष्णकपाले निरवधिगुणलीले
निर्जरनुतपदकमले नित्योत्सवशीले ।।
(जय देवि जय देवि)

□□

तोटकाष्टम्

श्री तोटकाचार्यकृतं

श्री शङ्करदेशियकाष्टम्

विदिताखिल - शास्त्र - सुधा - जलधे महितोपनिषत्कथितार्थनिधे ।
हृदये कलये विमलं चरणं भव शंकरदेशिक मे शरणम् ।।१।।

करुणावरुणालय पालय मां भवसागरदुःख विदूनहृदम् ।
रचयाखिल दर्शनतत्त्व विदं भव शंकरदेशिक मे शरणम् ।।२।।

भवता जनता सुहिता भविता निजबोधविचारणचारुमते ।
कलयेश्वरजीवविवेकविदं भव शंकरदेशिक मे शरणम् ।।३।।

भव एव भवानति मे नितरां समजायस चेतसि कौतुकिता ।
मम वारय मोहमहाजलधिं भव शंकरदेशिक मे शरणम् ।।४।।

सुकृतेऽधिकृते बहुधा भवतो भविता समदर्शनलालसता ।
अतिदीनमिमं परिपालय मां भव शंकरदेशिक मे शरणम् ।।५।।

जगतीमवितुं कलिताकृतयो विचरति महामहसश्छलतः ।
अहिमांशुरिवात्र विभासि गुरो भव शंकरदेशिक मे शरणम् ।।६।।

गुरुपुंगव पुंगवकेतन ते समतामयतां नहि कोऽपि सुधी ।
शरणागतवत्सल तत्वनिधे भव शंकरदेशिक मे शरणम् ।।७।।

विदिता न मया विशदैककला न च किञ्चन काञ्चनमस्ति गुरो ।
द्रुतमेव विधेहि कृपां सहजां भव शंकरदेशिक मे शरणम् ।।८।।

लिङ्गाष्टकम्

ब्रह्ममुरारि - सुरार्चितलिङ्गं निर्मल-भासित-शोभित-लिङ्गम् ।
जन्मज-दुःखविनाशक-लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।१।।
देवमुनि - प्रवरार्चित - लिङ्गं कामदहं करुणाकरलिङ्गम् ।
रावणदर्प-विनाशन-लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।२।।
सर्वसुगन्धि - सुलेपितलिङ्गं बुद्धिविवर्धन-कारणलिङ्गम् ।
सिद्ध-सुरा-ऽसुरवन्दितलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।३।।
कनक-महामणि-भूषितलिङ्गं फणिपति-वेष्टित-शोभितलिङ्गम् ।
दक्षसुयज्ञ-विनाशकलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।४।।
कुंकुम-चन्दनलेपितलिङ्गं पङ्कजहार - सुशोभितलिङ्गम् ।
सञ्चित-पाप-विनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।५।।
देवगणार्चित-सेवितलिङ्गं भावैर्भक्तिभिरेव च लिङ्गम् ।
दिनकरकोटि-प्रभाकरलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।६।।
अष्टदलोपरि वेष्टितलिङ्गं सर्वसमुद्भव - कारणलिङ्गम् ।
अष्टदरिद्र-विनाशितलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।७।।
सुरगुरु-सुरवर-पूजितलिङ्गं सुरवनपुष्प - सदार्चितलिङ्गम् ।
परात्परं परमात्मकलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।८।।
लिङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।।९।।

इति श्रीलिङ्गाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम्

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

ध्यानम्

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी निर्धूताखिल-घोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी ।
प्रालेयाचल-वंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥१॥

नानारत्न-विचित्र-भूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी मुक्ताहार-विलम्बमान- विलसद्वक्षोज-कुम्भान्तरी ।
काश्मीरा-ऽगुरुवासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥२॥

योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्माऽर्थनिष्ठाकरी चन्द्रार्कानल-भासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी ।
सर्वैश्वर्य-समस्त-वाञ्छितकरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥३॥

कैलासाचल-कन्दरालयकरी गौरी उमा शङ्करी कौमारी निगमार्थगोचरकरी ओङ्कारबीजाक्षरी ।
मोक्षद्वार-कपाट-पाटनकरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥४॥

दृश्याऽदृश्य-प्रभूतवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी ।
श्रीविश्वेशमनः-प्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥५॥

उर्वी सर्वजनेश्वरी भगवती माताऽन्नपूर्णेश्वरी वेणीनील-समान-कुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी ।
सर्वानन्दकरी दृशां शुभकरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥६॥

आदिक्षान्त-समस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी काश्मीरा-त्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुराशर्वरी ।
कामाकांक्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥७॥

देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी वामस्वादु-पयोधर-प्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी ।
भक्ताऽभीष्टकरी दशाशुभकरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥८॥

चन्द्रार्कानल-कोटिकोटिसदृशा चन्द्रांशुबिम्बाधरी चन्द्रार्काग्नि-समान-कुन्तलहरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी ।
माला-पुस्तक-पाश-साङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥९॥

क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी साक्षान्मोक्षकरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी ।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥१०॥

अन्नपूर्णे सदा पूर्णे शङ्करप्राणवल्लभे! ज्ञान-वैराग्य-शिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति ॥११॥

माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥१२॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितम् अन्नपूर्णास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

❑❑

अथ शिवमहिम्नस्तोत्रम्

श्रीगणेशायनमः

पुष्पदन्त उवाच

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ।।१।।
अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोरतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ।।२।।
मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मित-वतस्तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ।।३।।
तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः।।४।।
किमिहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ।।५।।
अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगतामधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ।।६।।
त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।।७।।
महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ।।८।।
ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं परोध्रौव्याऽध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव स्तुवन् जिह्वेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ।।९।।
तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ।।१०।।
अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरःपद्म-श्रेणीरचितचरणाम्भोरुहवलेः स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जित-मिदम् ।।११।।
अमुष्य त्वत्सेवासमाधिगतसारं भुजवनं बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ।।१२।।

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सतीमधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयोर्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यव-नतिः ।।१३।।
अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपाविधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रि-नयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ।।१४।।
असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत् स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ।।१५।।
मही पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडित-तटा जगद्रक्षायै त्वं नटिसि ननु वामैव विभुता ।।१६।।
वियद्व्यापी तारा-गणगुणितफेनोद्गमरुचिः प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमित्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ।।१७।।
रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिनगेन्द्रो धनुरथो रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बर-विधिर्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ।।१८।।
हरिस्ते साहस्त्रं कमलबलिमाधाय पदयोर्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भवत्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ।।१९।।
क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां क्व कर्मप्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ।।२०।।
क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपति-रधीशस्तनुभृतामृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रे-षस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ।।२१।।
प्रजानाथं नाथ! प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमभ्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ।।२२।।
स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटनादवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ।।२३।।
श्मशानेष्वा-क्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराश्चिताभस्मालेपः स्त्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ।।२४।।
मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्द इव निमज्ज्यामृतमये दधत्यंतस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ।।२५।।
त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहस्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं नविद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ।।२६।।

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरान-कारावैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः समस्तव्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ।।२७।।
भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहांस्तथाभीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देवश्रुतिरपि प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते ।।२८।।
नमो नेदिष्ठाय प्रियदवदविष्ठाय च नमो नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ।।२९।।
बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ।।३०।।
कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं क्व च तव गुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः ।
इतिचकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्वरद-चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ।।३१।।
असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहित्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।।३२।।
असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दु - मौलेर्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ।।३३।।
अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्र-मेतत्पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ।
सभवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ।।३४।।
महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ।।३५।।
दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः महिम्नःस्तव-पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।३६।।
कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
सगुरुनिजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा त्स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ।।३७।।
सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ।।३८।।
श्रीपुष्पदन्तमुख-पङ्कजनिर्गतेन स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ।।३९।।
इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः । अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ।।४०।।

।। इति पुष्पदन्तगन्धर्वराजविरचितं श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

□□
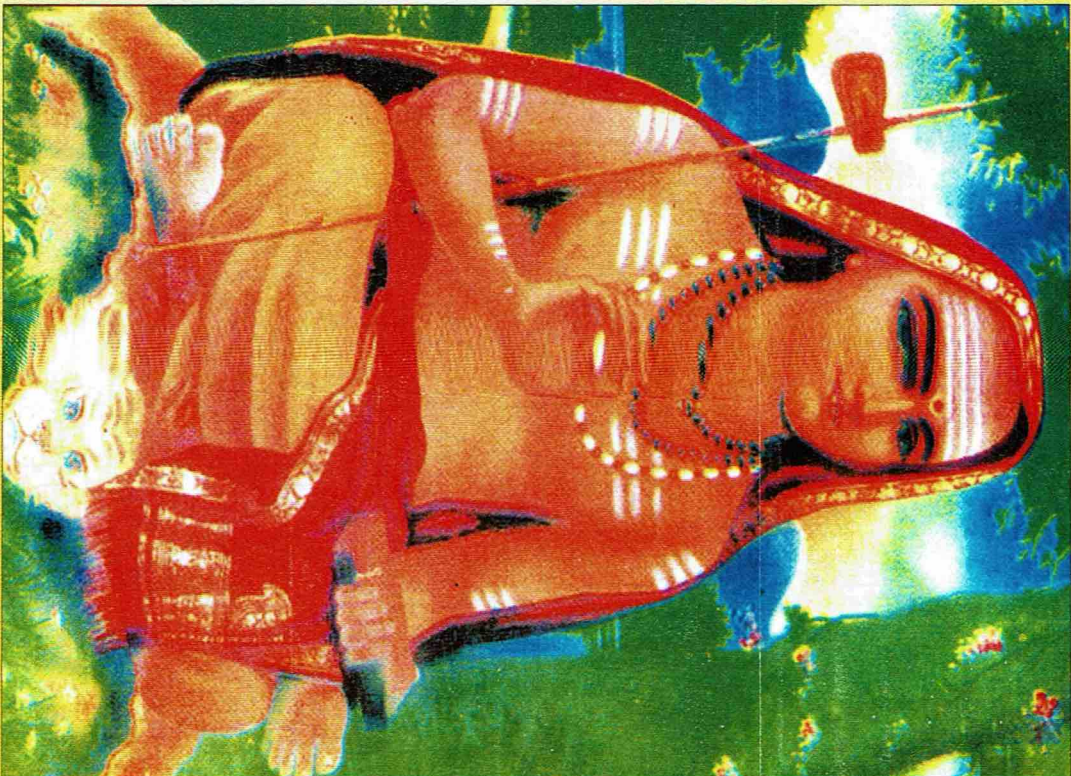
आदि शङ्कराचार्य

ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी सुमेरु पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंङ्कराचार्य
अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री शंङ्करानन्द सरस्वती जी महाराज
काशी
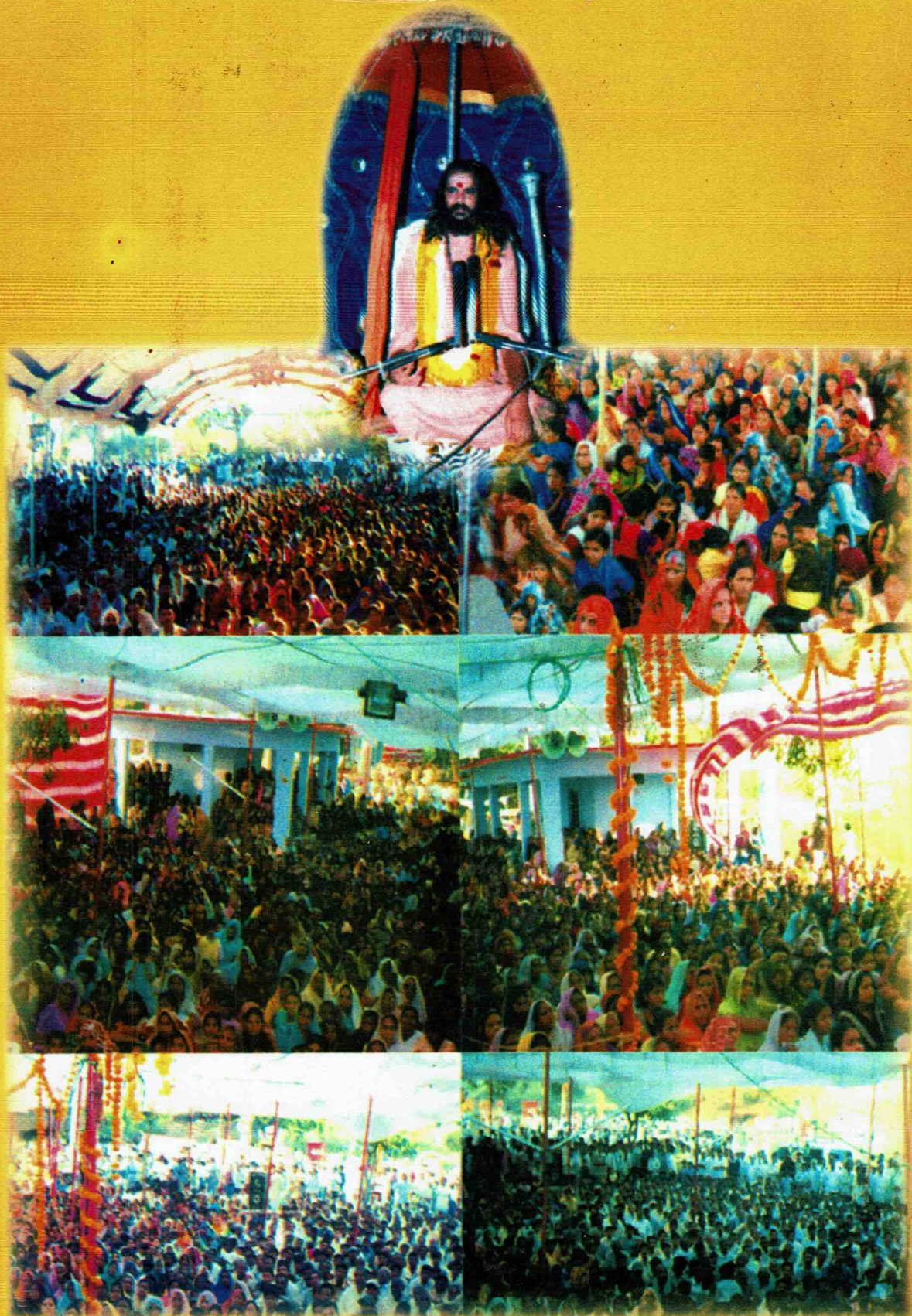
उज्जैन महाकुम्भ में अपार जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए महाराज श्री